Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३५३; १६ से ३१ मार्च, १९८४

व्यंग्य रचनाएं

9. बेचारी बनफशा बेगम : अमृतलाल नागर
13. सरकार के तीनों अंग : रवींद्रनाथ त्यागी
20. चारों धाम घरवाली है : के. पी. सक्सेना
22. अभिनंदन : मुज्तबा हुसैन
25. चची जान : अतिया परवीन
28. दिल का दौरा : नरेंद्र कोहली
31. सम्मेलनी समां : सूर्यबाला
38. मुलाकात : रामलाल नाभवी
41. प्रजातंत्र में बुनियादी अधिकार : विनोदशंकर शुक्ल
43. चेहरे : भगवतीशरण मिश्र
47. सांप मार खां : शौकत थानवी
50. शीत लहर : शुभा सक्सेना
53. पड़ोसियों का दर्द : सुरेश कांत
56. अंग्रेजी खाने का सुख : प्रदीप पंत
58. भारतीय वैज्ञानिक फिल्म की अविस्मरणीय कहानी : वीरेंद्र जैन
60. ओम शांति : प्रेम जनमेजय
62. मैं और वे : सुरेश उनियाल

लघु रचनाएं

10. बात ऐसी है कि...
14. गुस्ताखी और क्षमा
21. घोड़े को संस्कृत पढ़ाने वाला पंडित
24. यशपालजी का हनीमून
26. अदब का रहस्य
30. जूते बनाम पादुका-पुराण
54. सांप! आजकल तो तुम शहर में ही हो!
72. जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी

बहस

16. पीढ़ियां आमने-सामने : विजेंद्र स्नातक, नरेंद्र कोहली, शेरजंग गर्ग, प्रेम जनमेजय और हरीश नवल की एक बातचीत.

विशेष

66. परसाई की कहानियां : धनंजय वर्मा

स्थायी स्तंभ

6. आपकी बात
33. तुलसीदास चंदन घिसैं : हरिशंकर परसाई

▣ आवरण : **चंचल**

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उप-संपादक :
रमेश बतरा, सुरेश उनियाल, बलराम, महेश दर्पण

सज्जा : **सुमीता चक्रवर्ती**

व्यंग्य-कथा विशेषांक

36. गलियां : जहां इतिहास कैद है : बाला दुबे
39. तस्वीर बोलती है : धर्मवीर जयनर
49. शरारत : चंद्रकांत बक्षी
64. भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार
70. हलचल

धारावाही आयोजन

71. दशार्क (तेरहवीं किस्त) : जैनेंद्र कुमार

पाठकों को सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे चंदा आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में नीचे दिये गये कूपन के साथ हमें भेजें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

चंदा तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया,
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अब चंदे की दरें इस प्रकार हैं :
वार्षिक : ८० रुपये
अर्ध-वार्षिक : ४१ रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.

नाम..............
पता..............
....
हस्ताक्षर...........

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

काश हम आवाज़ सुन पाते!

कल ही 'सारिका' का ताजा अंक (349) मिला. एक के बाद एक कहानियां पढ़ता गया. प्रियंवद की कहानी 'दो बूढ़े', भगवती प्रसाद की लघुकथा 'एक और बलात्कार' और जैनेंद्र जी के उपन्यास 'दशार्क' की दसवीं किस्त कहीं बहुत गहरे छू गई. प्रियंवद की कहानी की कोढ़ से रिसती अपने प्रिय की उंगलियों को चूमती फत्तो, 'एक और बलात्कार' की बुखार में तपती अपने आदमी की हवस का दृव्य बनती आंसुओं से तरबतर पत्नी सुनयना तथा 'दशार्क' की रंजना का यह कहना—"आप कुचली हुई हैं, पामाल हैं, बेगैरत हैं, सबकी दुरदुराहट की पीकदान हैं लेकिन मैं जानती हूं कि आप थामे हुए हैं ऊपर उस सारी चीज को जिसे तहजीब माना जाता है. . . "इस बात की ओर इशारा करता है कि मूल्यहीनता की फिसलन भरी जमीन पर लुढ़कते हुए भी हमारे भीतर कुछ आवाजें हैं जो निरंतर चेतावनी दे रही हैं. काश हम इन आवाजों को सुन पाते.

सुरेश उनियाल की कहानी 'किस्सा एक चोर की मौत का' वर्तमान व्यवस्था पर एक सार्थक चोट करती है. गौरीशंकर नागदंश की 'जंगल में माचिस,' नासिरा शर्मा की 'खिड़की,' अनत रमेश की 'चूहा भी हंसता है' अपने कथ्य के साथ न्याय करती हैं.

परसाई जी का नया कालम 'तुलसीदास चंदन घिसैं' बहुत अच्छा लगा. 'विश्व हिंदी नौटंकी' का यह वाक्य—"मतलब यह कि अपनी भाषा से हम उखड़े जा रहे हैं, अपनी संस्कृति से उखड़े जा रहे हैं, पश्चिम के टुच्चे नकलची हो रहे हैं"—हमें अपने दोगलेपन पर सोचने के लिए बाध्य करता है. गत अंक (348) में परसाई जी ने लिखा—"संतों की भीड़ नहीं हुआ करती. अगर भीड़ थी तो तीन चौथाई लुच्चे होंगे. यह लुच्चन की भीड़ हो गयी. दिन भर तुलसीदास के हाथ चंदन घिसते-घिसते दुखने लगे होंगे और रघुवीर अधिकांश लुच्चों को तिलक करते रहे"—पढ़ा. अपने आसपास यही सब तो हो रहा है.

▣ डा. महेंद्र सिंह परमार, रायगढ़

ग्राम चेतना के संकेत

16 से 31 जनवरी के अंक में श्री सच्चिदानंद धूमकेतु की कहानी 'शेष गांव' में कथ्य की उसी गतिशीलता का सशक्त परिचय मिला, जिसके लिए धूमकेतु की अपनी खास पहचान कहानीकारों के बीच है. ग्राम-चेतना के कथाकार श्री धूमकेतु ने इस कहानी के माध्यम से यह संकेत दे ही दिया है कि शोषित वर्ग का प्रतिनिधि हरिनारायण शोषक वर्ग के प्रतिनिधि श्री गोस्वामी जी के अंत की भविष्यवाणी करने की स्थिति में आ गया है. यह भी संकेत है कि गांवों में शोषक एवं 'सामंतों' का वर्ग अब सीधे मुठभेड़ करने की स्थिति में नहीं है. इसलिए अब वह साजिश करता है और शोषित वर्ग की जागती हुई दृष्टि को नष्ट करने का घृणित अपराध कर रहा है.

इस अंक की दूसरी अच्छी कहानी 'जंगल में माचिस' है.

▣ प्रियरंजन, पटना.

यथार्थ के करीब

अंक 349 में नासिरा शर्मा की 'खिड़की' आज के शिक्षा जगत में व्याप्त विसंगतियों का एक जीता-जागता एवं

परसाईजी को बधाई

हिंदी व्यंग्य को शूद्रत्व से मुक्त कर क्षत्रित्व प्रदान करने के गुरुतर कार्य के लिए हिंदी साहित्य का इतिहास जिन कुछ चुने हुए रचनाकारों का उल्लेख करेगा, उनमें हरिशंकर परसाई का नाम निर्विवाद रूप से सबसे ऊपर होगा. दो टूक बात कहती परसाई की कलम की उत्कृष्टता को सुधी पाठकों ने बहुत पहले स्वीकार कर लिया था, जिसे देश की साहित्य अकादमी ने भी अंततः स्वीकार किया और परसाईजी की व्यंग्यकृति 'विकलांग श्रद्धा का दौर' को साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया. बंबई से बीस हजार रुपये का चकल्लस पुरस्कार लेकर परसाईजी अभी चैन की सांस ले भी नहीं पाये थे कि मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग ने इक्कीस हजार रुपये का शिखर सम्मान उन पर लाद दिया. शासन से मिली पीठ से तो परसाईजी उतर ही गये थे पुरस्कार लेने के लिए भोपाल भी नहीं गये. हार कर मुख्यमंत्री ने यह सम्मान जबलपुर स्थित उनके निवास पर जाकर प्रदान किया. शूद्रत्व से क्षत्रित्व और अब क्षत्रित्व से ब्राह्मणत्व की ओर हिंदी व्यंग्य और व्यंग्यकार का यह प्रस्थान शायद भविष्य का इंगित है.

अट्ठावन वर्षीय परसाई इन दिनों अपने समकालीनों पर एक किताब लिख रहे हैं, जिनमें रचनाकार ही नहीं, परसाईजी के संपर्क में आये रिक्शेवाले और पनवाड़ी तक शामिल हैं. लेखकों के लिए परसाईजी की सलाह है कि 'ऐसा सोचकर कभी मत लिखो कि मैं शाश्वत लिख रहा हूं. . .जो युग के प्रति ईमानदार नहीं है, वह अनंत काल के प्रति क्या ईमानदार होगा!' अर्से तक मध्य प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष रह चुके परसाईजी के विशाल व्यक्तित्व और कृतित्व को विश्लेषित विवेचित करती अनेक रचनाकारों के लेखों की संपादित किताब 'आंखिन देखी' पिछले दिनों काफी चर्चित रही है.

परसाई जी को मिली चौतरफा प्रतिष्ठा, सम्मान और पुरस्कार के लिए 'सारिका परिवार' की हार्दिक बधाई. □

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज चित्रण है. जिसके अंदर झांक तो हर कोई लेता है पर हल किसी को नहीं दिखाई देता. जसवंत सिंह विरदी की 'भेड़िया' एवं पूरन मनराल की 'सड़क' यथार्थ के काफी करीब है तथा पुलिस और प्रशासन की सच्चाई उजागर करती हैं.

जैनेंद्र कुमार के 'दशार्क' का यह अंश विशेष आकर्षक और अर्थपूर्ण लगा. इसमें वेश्याओं की मनोव्यथा का अत्यंत मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण है. जहां जैनेंद्र जी के तत्त्व-दर्शन की प्रगल्भता साफ झलकती है.

▣ तेज बहादुर सिंह, बलिया (उ.प्र.)

नौटंकी का पटाक्षेप

'सारिका' अंक 349 देखा. वैसे मैं 'सारिका' नियमित रूप से खरीदता हूं. पर समय की कमी के कारण केवल लघु कथाएं ही पढ़ पाता हूं. हिंदी से विशेष लगाव है अतः हिंदी पर लिखे गए व्यंग्य और अन्य साहित्य पर बहुत ध्यान देता हूं और हाथ लगते ही पढ़ डालता हूं. 'तुलसीदास चंदन घिसैं' के अंतर्गत हरिशंकर परसाई जी ने आखिर 'विश्व हिंदी नौटंकी' का पटाक्षेप कर ही दिया. सचमुच हिंदी की घर से लेकर समाज तक और दफ्तर के अंदर फाइलों तक क्या विचित्र स्थिति है इसे देखकर हमें चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए. हमारी संस्कृति जैसे तवाह होती जा रही है.

▣ रमेशचंद, नयी दिल्ली

उत्तरोत्तर गहनता

आइए अंक 349 वाले इस पाक्षिकी के लिए श्री अनत रमेश (चूहा भी हंसता है), श्री प्रियवंद (दो बूढ़े) और श्री सुरेश उनियाल (किस्सा एक चोर की मौत का) को विशेष शाबाशी दे दूं. जैनेंद्र कुमार का 'दशार्क' तो अंक प्रति अंक गहराता ही जा रहा है.

▣ अजय कुमार, गिरिडीह (बिहार)

अहम् की तलाश

'सारिका' अंक 349 पढ़ा. प्रियंवद की कहानी 'दो बूढ़े' में जीवन को परिभाषित करने के क्रम में, सुलझा हुआ यथार्थ था. जिसे जिस 'कोण' से भी देखो, वह 'अपना' ही लगता है. जो कोण टूट गया. वह गैरत से पूर्ण लगता है.

हरिपाल त्यागी की 'खुशी' आज के अर्थ (मशीन) युग में, मानसिकता के ह्रास या विकास पर, कशमकश की स्थिति पैदा कर जाती है. अहम् कहां हो, इसकी तलाश है?

▣ अरुण अभिषेक, पूर्णिया

बकलम अश्कजी

'सारिका' के 16 से 31 जनवरी के अंक में श्री हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लेख 'विश्व हिंदी नौटंकी' पढ़ा. सुनी-सुनाई के बल पर चलते-चलाते उन्होंने दो व्यंग्य-वाण 'ग्रीब अश्क' पर भी चला दिये हैं. अभार व्यक्त करते हुए अश्क सिर्फ यही कहना चाहता है—

"जिक्र मेरा मुझसे अच्छा है कि उस महफिल में है."

परसाई ने तो सुनी-सुनाई के बल पर लिखा है पर 29 अक्तूबर की रात को जब बड़े-बड़े हिंदी लेखक और विभागाध्यक्ष चंद नवालों के लिए कुत्तों की तरह लड़ने पर विवश कर दिये गये तो अश्क अकेला नहीं था. और जब उसका घुटना मेज और दीवार के बीच में आकर चोट खा गया तो उसे भी दूसरों ने देखा था. फिर यदि मान भी लिया जाय कि अश्क ने नाटक ही किया तो क्या परसाई इसे इतना मूर्ख समझते हैं, वह उनके किसी मित्र को (जिसका नाम लेना उन्होंने जरूरी नहीं समझा) यह कहता, "अरे यार ये लटके करने ही पड़ते हैं."

रही हिंदी साहित्य सम्मेलन के मामा-भांजे का पक्ष लेकर उनके दुश्मनों के बीच जाकर उनका बदला चुकाने की बात, तो परमादरणीय परसाई जी को यह भी मालूम नहीं कि पूरी स्थायी समिति के सामने अपनी बात कह कर, 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के उपसभापतित्व से त्याग-पत्र दिये हुए भी अश्क को साल से ऊपर समय बीत चुका है.

'ग्रीब अश्क' परसाई के व्यंग्य का प्रशंसक रहा है. वह उनकी खिदमत में यह अर्ज करना चाहता है— कि है ग्रीब-नवाज! व्यंग्य जब झूठ का पर्दाफाश करता है तो उसमें बेपनाह काट आती है, लेकिन जब वह सच पर पर्दा डालने की कोशिश करता है तो बुरी तरह भोंतरा हो जाता है.

▣ उपेंद्रनाथ अश्क, इलाहाबाद

सारिका कहानी मंच का उद्घाटन समारोह

कालेज आफ वोकेशनल स्टडीज में हिंदी कहानी लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए 'सारिका कहानी मंच' का उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ. मुख्य अतिथि थे सारिका के संपादक श्री अवधनारायण मुद्गल.

श्री मुद्गल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि कहानी लेखन के संबंध में कई तरह की समस्याएं उत्पन्न हो गई थीं. प्रतिष्ठित लेखकों के साथ-साथ नयी पीढ़ी का झुकाव भी कहानी-लेखन की बजाए उपन्यास की ओर बढ़ रहा था और भय था कि कहीं कहानी लेखन समाप्त ही न हो जाए. मंच का आयोजन इसलिए किया गया है ताकि कहानी-लेखन के प्रति युवा पीढ़ी आकर्षित हो.

श्री मुद्गल ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि इस महाविद्यालय में श्री रमेश उपाध्याय एवं श्री प्रेम जनमेजय जैसे प्रबुद्ध साहित्यकार उपस्थित हैं. उनसे यहां के कहानीकारों को उचित मार्गदर्शन मिल सकेगा.

उद्घाटन भाषण के पश्चात कालेज की दो छात्राओं रीटा मदान एवं मीनाक्षी भाटिया ने क्रमशः 'पढ़े लिखे गंवार' एवं 'नीलिमा' शीर्षक से कहानियां सुनायी. कार्यक्रम का संचालन सुनील आशु ने किया एवं धन्यवाद ज्ञापन परिषद की अध्यक्षा जगविंदर नरूला ने किया. कालेज आफ वोकेशनल स्टडीज में 'सारिका कहानी मंच' के निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गए—अध्यक्ष : रीटा मदान, सचिव—मीनाक्षी भाटिया, उपाध्यक्ष-कविता तुली उपसचिव-राजजेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारी बनफशा बेगम

□ अमृतलाल नागर

बनफशा बेगम का बचपन नाजो-नखरों में बीता. बाप की लाडली रहीं, बड़ी गुस्सावर, बला की बदजबान, मगर पाक-साफ इतनी कि अकल से भी पाक-साफ रहीं. . . .और अपनी खुशफहमी में जिसे अकल समझकर अमल में लाती रहीं उससे और तो कुछ हासिल न हुआ, अलबत्ता पहले खाविंद खोया, फिर बहू, फिर बेटा, फिर . . .बड़ी लंबी फेहरिस्त है यह तो . . .पाने और खोने का यह सिलसिला किस शान से आज भी जारी है——बयान कर रहे हैं नागरजी——

लखनऊ के नवाब मर गये मगर औलादें छोड़ गये हैं, नवाबी न रही मगर उसके खंडहरों में अब भी पुराने उल्लू बोलते हैं. यकीन न हो तो गुलजार बाग चले जाइए. कौन बड़ी दूर है. कहीं से बस का टिकट कटाइये, सीधे शहर के छोर तक चले जाइए, आगे नदी पड़ेगी, नाव वाले को टका उतराई और दस नये पैसे बख्शिश के दीजिए और फिर उस पार नाक की सीध में चलते ही चले जाइए. दाएं मुड़ेंगे तो मरघट पड़ेगा, बाएं बढ़ेंगे तो चनहट पड़ेगा. बस उसी गांव से लगा हुआ गुलजार बाग है.

यों तो गुलजार बाग में अब न गुल रहे न बुलबुल. एक मील के घेरे में उसकी टूटी चहारदीवारी की ईंटें जाबजा बिखरी पड़ी हैं. अंदर बारहदरी की टूटी शहतीरों पर जब बिसखोपड़े नहीं दौड़ते तो गिलहरियां अपनी दुमें ऊंची उठाए आगे के चुन्ने-मुन्ने पंचों से अपनी मूंछें साफ करती हैं. हम्माम में सियारों ने जाबजा अपने भिटे खोद रखे हैं. जगह-जगह कमर-कमर तक घास उगी खड़ी है. चारों ओर धतूरे और भटकैया के फूलों का जंगल उगा हुआ है. यह देखकर कौन कह सकता है कि आज से अट्ठाइस-तीस बरस पहले तक यही जगह मीठी बोलियां बोलने वाली चिड़ियों और मीठी तानें लेने वाली नाजनियों से हर वक्त ही गूंजा करती थी.

दुल्लू नवाब ने अपने खानदानी दुश्मन अच्छन नवाब की इकलौती बेवा को अपने इश्क के चंगुल में फंसाकर इसी बाग और बारहदरी में बड़े-बड़े ऐश किये थे. उनकी ब्याहता बनफशा बेगम इसी बाग के पच्छुम तरफ पुरानी कोठी में कोसा, काटी, जादू-टोने किया करती थीं, सौत ने ऐसा कंपा डाला था कि बनफशा बेगम का कोई दांव ही न लग पाता था.

बनफशा बेगम गुल्लूखां पठान की बेटी बड़े नाजों पली, बड़ी पाक-साफ, बड़ी गुस्सावर और बला की बदजबान थी. बाप ने हींग के व्योपार में लाखों रुपये कमाये और बड़ी साध से अपनी इकलौती लाड़ली को गुलजार बाग के खानदानी नवाब के यहां दिया. लेकिन दुल्लू नवाब का आला खानदान और गल्लूखां पठान की हींग की कमाई, कोई भी बनफशा बेगम के काम न आयी क्योंकि मियां उनके साये से ही कतराते थे. बनफशा बेगम चाहती थी कि नवाब साहब पांचों वक्त की नमाज पढ़ा करें, अपने मजहब के पाबंद रहें, और नवाब साहब चाहते थे कि बेगम अपनी दौलत उनके नाम लिख दें ताकि वे उसे भी अपने बाप-दादों के माल की तरह फूंक सकें. न ये उनके काबू में आयीं और न वो इनके. बीच ही में बेवा मुन्नी बेगम उन्हें हथिया ले गयीं.

हाय, क्या-क्या न बीता बेचारी बनफशा बेगम पर. महीनों तक नवाब साहब का साया भी देखना नसीब न होता. ये इतनी भारी कोठी और उसमें टुटरूंटूं तीन इंसान—मायके से साथ आयी हुई कल्लो महरी, दारोगा पीरअली और खुद बनफशा बेगम. उधर गुलजार बाग में नौकरों-चाकरों, लौंडियों-बांदियों की फौज की फौज थी. बनफशा बेगम को और सब कुछ खल कर भी न खला, मगर इस बात पर जान जाती थी कि मेरे शौहर पराये हो गये. दिल में कुछ रखना न आता था, इतनी पाकसाफ थीं कि अक्ल से भी पाक रहीं. ईद-बकरीद कभी भूले-भटके नवाब साहब आये भी तो उन्हें देखते ही खड़ी-खड़ी बिजलियां कड़कड़ाती थीं. दुल्लू नवाब चुपचाप सिर झुकाए खड़े रहते फिर अपने ही हाथों गिलौरीदान से पान लेकर रुखसत हो जाते थे. नवाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

● अमृतलाल नागर

साहब उनसे डरते थे. उनकी पाकीजगी का भी उन पर गहरा असर था, मगर दोनों के मिजाज मेल न खा सके.

एक दिन संयोग से कोठी में काम करने वाली एक नब्बे साल की बूढ़ी पुरानी महरी मरने से पहले अपने मालिक और बेगम साहबा को देख लेने और दुआएं देने की गरज से डोली पर बैठकर आयी. बनफशा बेगम और पीरअली से नवाब के हाल सुने कि इलाके पर इलाके बिकते चले जा रहे हैं, कर्ज बढ़ रहा है, मुन्नी बेगम का माल भी खा-पी बैठे हैं. शरीफ हैं, दिल दरियाव हैं, इन्हें मुन्नी बेगम और मुसाहबीन बहकाये हुए हैं. महरी ने इस खानदान की एक पुरानी कहानी सुनायी, कि नवाब बड़े बहादुर थे मगर इसी तरह वे भी बुरी सोहबत में पड़ गये थे उधर बादशाह पर दुश्मन का धावा हुआ इधर ये नशे में आठों पहर धुत्त. सब लोग समझा-समझा के हार गये मगर वहां सुनता ही कौन था—बल्कि नशे के आलम में नेक सलाहों का मजाक उड़ाया जाता. बेगम साहबा थीं इन्हीं दुल्लू नवाब की सात पुश्तों में कोई दादी-परदादी. मुगल की बेटी, दबंग और बड़ी आनबान वाली थी. एकाएक मर्दाने में चाबुक लेकर पहुंच गईं, मुसाहबों, नाचनेवालियों पे दनादन चाबुक बरसने लगे, भगदड़ पड़ी. उन्होंने नवाब साहब को अपने हाथों जिरहबख्तर पहनाया, तलवार दी और कहा कि सुर्खरू होकर लौटिए और फिर वही रागरंग कीजिए मैं दखल न दूंगी. ऐसी दबंग थीं.

बनफशा बेगम को यह सुनकर मानो अपनी घुटन का इलाज मिल गया. एक नजूमी ने बतलाया था कि साल भर में लड़का होगा और अगर अब न हुआ तो कभी न होगा. साल बीता जा रहा था और ओझा, सयाने, मौलवी, पंडित कोई भी नवाब साहब को बेगम के पास न ला सके थे. लिहाजा बेगम साहबा ने इस खानदान की पुरखिन से सबक लेकर डोली मंगवाई और साथ हंटर के गुलजारबाग पहुंच गयीं. पुरखिन बेगम ने तो मुसाहबों की मरम्मत की थीं मगर बनफशा बेगम ने अपनी सौत को हंटर नाच नचाया. दुल्लू नवाब बचाने उठे तो उन पर भी चाबुक बरसे. मुन्नी बेगम बेहोश हो गईं और बनफशा बेगम अपने शौहर को मार से रिझाकर अपने यहां ले आयीं और कमरे में ताला डालकर हर वक्त अपनी नजरों के सामने रखा.

इस तरह बनफशा बेगम के नूरेनजर टुन्नूमियां पैदा हुए.

बाद में मुन्नी बेगम और दुल्लू नवाब कभी मिल न सके. उधर वो मरीं इधर ये दफन हुए. इलाके लुट गये बाकी कर्ज में गये. अब बनफशा बेगम हैं, उनके लख्तेजिगर टुन्नू नवाब हैं, कल्लो और पीर अली हैं, दो आमों के बाग हैं, थोड़ी-सी खेती है—न किसी से लेना न देना, न कहीं जाना न आना. इतने बरसों में बनफशा बेगम बहुत मजबूर होकर एकाध बार ही किसी रिश्तेदार के यहां जाने के लिये ड्योढ़ी से बाहर गईं. मगर टुन्नू मियां ने तो, जब से पैदा हुये तब से आज तक कभी बाहर की दुनिया में कदम नहीं रक्खा. खुदा के फजल से दाढ़ी-मूंछें निकल आई हैं मगर टुन्नू नवाब अब तक दुधमुंहे बच्चे ही हैं, बेगम साहबा या कल्लो महरी उन्हें अपने हाथ से खिलाती हैं. इनकी जैसी देखभाल होती है वैसी हर मां अपने बच्चे की कर नहीं सकती. आसेबी बचावों के लिए गंडे-ताबीजों से मढ़े हैं, सर्दी से बचाव के लिए कपड़ों के गिलाफ पर गिलाफ चढ़ाये जाते हैं, धूप से बचाव के लिए खिड़की दरवाजे बंद रक्खे जाते हैं, गरज कि हर जतन से, हर हवा से बचा के रक्खे जाते हैं. तिस पर भी कोई न कोई बीमारी लगी ही रहती है, टुन्नू मियां दुबलाये चले जाते हैं.

बात ऐसी है कि. . .

▣ शंकर दयाल सिंह

और किसी के साथ नहीं, यह घटना एक मजिस्ट्रेट साहब के साथ घटी. कार्यालय में पहुंचे तो कलाई की ओर नजर गयी तो पाया कि घड़ी घर में ही छूट गयी है और मुकदमे की सुनवाई करते हुए ही उन्होंने अपने पेशकार से कहा कि घड़ी आज टेबल पर ही छोड़कर चला आया. किसी सयाने ने यह बात सुन ली.

कुछ ही देर बाद एक आदमी दो मुर्गियां लिये हुए मजिस्ट्रेट साहब के घर पर हाजिर हुआ और उसने उनकी मेम साहब के पास जाकर दोनों मुर्गियां देते हुए कहा कि साहब ने भेजा है, शायद कोई रात में खाने पर आने वाले हैं और टेबिल पर उनकी घड़ी छूट गयी है. उसे मांगा है. श्रीमतीजी ने न इधर देखा, न उधर. घड़ी लाकर दे दी और मुर्गियां रख ली.

शाम को मजिस्ट्रेट साहब जब घर आये तो श्रीमती जी ने पूछा, "कौन आने वाले हैं?" मजिस्ट्रेट साहब ने कहा, "कोई तो नहीं."

"तब मुर्गी आपने किसके लिए भिजवायी?" उन्होंने दूसरा सवाल पूछा तो मजिस्ट्रेट साहब उचके, "कैसी मुर्गी?" इधर मजिस्ट्रेटियाइन अलग ताव पर. "आपका ही आदमी तो आया था, वह दो मुर्गी दे गया और आपने घड़ी मंगवाई थी, वह ले गया."

मजिस्ट्रेट साहब ने माथा पकड़ लिया. भला ऐसा मेरे साथ भी हो सकता है. पत्नी को हिदायत दी, "आगे से इस प्रकार किसी की बात पर यकीन न करें."

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साल भर से नजला बिगड़ा हुआ है, कभी बुखार कभी जुकाम. जब हर तरह से हार गईं तो पीरअली को किसी ने सलाह दी कि पांच बड़े डाक्टरों की कमेटी बुला लो. बेगम साहबा फौरन राजी हो गईं. चौंसठ और बत्तीस रुपये फीसों वाले डाक्टर आये. आला लगा के देखा. हर बात सुनी. आपस में अंग्रेजी बोले फिर चौंसठ रुपये वाले डाक्टर ने कहा, "साहबजादे को मर्जे जवानी है. इलाज यही है कि इनके वास्ते जल्द से जल्द एक चांद-सी दुल्हन ला दीजिए."

"ऐ हे! खाक धूल पड़े इन अल्लाहमारों की पढ़ी लिखी अक्ल पर. बिगड़े हुए नजले-जुकाम का बुखार है. और कहते हैं कि मर्जे-जवानी है. शैतान के सौ-सौ दुर्रे इन मुओं की पीठ पर—मेरे बच्चे को नजर लगाते हैं. उसकी उठान नहीं देखी जाती इनसे. पीरअली, खड़े क्यों हो, इन्हें फौरन यहां से हटाओ. फीस के रुपये मैं नीचे दीवानखाने में भिजवाती हूं."

सोलह और बत्तीस वाले डाक्टरों की त्योरियां तो चढ़-चढ़ गईं, मगर चौंसठ वाले डाक्टर साहब मुस्कराकर ही रहे. दरवाजे के पीछे से जब बेगम साहबा की बिजलियां कड़कने से टुक थमाव पाया तो डाक्टर टुन्नू नवाब से बोले, "नवाब साहब, हम भला आपको नजर लगा रहे हैं? नजर तो बच्चों को लगती है मगर आप तो जवान हैं—ये देखिए, हमारे डाक्टर मोहसिन की तरह. अगर आपकी वालिदा आपको अपने गलत लाड़ की वजह से बच्चा न बनाये रखतीं तो अब तक आप दो बच्चों के बाप हो जाते."

सत्ताइस-अट्ठाइस बरस के बच्चे टुन्नू नवाब सुन-सुनकर कभी शरमाते, कभी खिः खिः खिः हंसते, कभी मुंह में उंगली देकर ताज्जुब में पड़ जाते. डाक्टर रिजवी भी हंसकर बोले, "अरे बरखुरदार, ये सन् उन्नीस सौ सत्तावन है. समझे म्यां. इन्कलाब करो, ये चेहरे का जंगल साफ कराओ, शहर में जाकर रहो, सिनेमा देखो, मुहब्बत के गीत गाओ. . ."

दरवाजे के बीच में बनफशा बेगम रोने-गरजने और कोसने लगीं. बड़े डाक्टर ने साहबजादे से कहा, "अगर आपकी वालिदा माजिदा आपको जबर्दस्ती नन्हा-मुन्ना बनायें तो मुझे खबर दीजिएगा मैं उन्हें पागलखाने भिजवा दूंगा."

इस बात पर तो कहर बरपा हो गया, मगर बनफसा बेगम फिर टुन्नू नवाब को अपने बस में न कर सकीं. उन्होंने आठों पहर का रोना मचलना ठाना—सैर करेंगे, बाहर जायेंगे, दुल्हन लायेंगे.

अम्मीजान के लिए यह नयी मुसीबत आई. एक बार पीरअली को साथ लेकर खुद सिनेमा दिखा लाईं मगर वह रोज-रोज मचलने लगे. हर बार इस बुढ़ापे में बेगम साहिबा बेचारी कहां तक सिनेमा देखें, कहां तक सैर करें. हर जगह वह जा भी नहीं सकतीं और लड़के को नजर ओट भी नहीं किया जाता. सबसे बड़ी मुसीबत तो दुल्हन थी. कोई रिश्ता ही न मिलता था. रिश्तेदार आला खानदान के लोग टुन्नू मियां को अपना दामाद बनाने को राजी ही न होते थे, कहते थे कि भेड़िये कि मांद में पला बच्चा है, न आदमियों की बोली समझे न चाल ढाल.

खैर, बमुश्किल तमाम एक गरीब मगर शरीफ की लड़की से रिश्ता तय किया. धूमधाम से बरात गयी, बनफशा ने दिल खोल दिया. चांद-सी दुल्हन घर आ गयी.

मगर बेचारी बनफशा बेगम की किस्मत में सुकून तो लिखा ही नहीं. शादी के बाद चंद हफ्ते भी न बीते कि दुल्हन के पेट में दर्द उठा. बेचारी तड़प-तड़प गई. फिर वही बड़े-बड़े डाक्टर आये, कहा कि अस्पताल में आपरेशन होगा. और जब आपरेशन हो गया तो डाक्टर बोले, "बेगम साहबा, आपकी दुल्हन तो अब लड़की से लड़का हो गई है. नवाब साहब के लिए नयी बेगम तलाश कीजिये."

बेगम साहबा रो-रो मरीं. उनका जीना मुहाल हो गया. एक दिन हार कर बड़े डाक्टर के यहां गयीं, पांच हजार के नोट उनके आगे रखकर कहा, "मुझ बेकस लाचार बेवा पर रहम खाइये. जैसे आपने उस लड़की को लड़का बना दिया वैसे ही मेरे टुन्नू को टुन्नी बना दीजिए. वरना मुझे जहर दे दीजिए. ये अगर लड़का रहेगा तो अपने बाप का बदला मुझसे यों ही लेता रहेगा. मैं आजिज आ गई."

डाक्टर साहब को उन्हें समझाने में लेने के देने पड़ रहे हैं मगर बेगम हैं कि उनका दामन ही नहीं छोड़तीं. □

और दूसरे दिन जब कार्यालय पहुंचे तो बड़े झल्लाये हुए थे, चाहे जैसे भी हो, उस आदमी को तो पकड़ना ही होगा, जिसने इस तरह की दगा उन्हें दी. उनके अमले-फैले इस-उसको खोजने दौड़े, पुलिसवालों को भी बुलाकर हिदायत दी जाने लगी कि उस घड़ी और मुर्गी वाले को चाहे जिस प्रकार भी हो पकड़ा जाये कि तभी एक आदमी दौड़ा हुआ मजिस्ट्रेट साहब के यहां हाजिर हुआ और हांफता हुआ उनकी पत्नी से बोला, "मेम साब, वह घड़ी चोर पकड़ा गया और साहब के पास पुलिस वाले लेकर बैठे हैं. साब ने मुझे भेजा है कि वह मुर्गियां लेते आओ." श्रीमतीजी ने हंसी-खुशी मुर्गियां लाकर दे दीं और बोलीं, "उस चोर की पहले कसकर मरम्मत करवाना कि आगे से उसकी आदत छूट जाये."

"सो तो होगा ही." उस आदमी ने कहा, आदाब बजाया और मुर्गी लेकर चलता बना.

शाम को मजिस्ट्रेट साहब जब घर लौटे तो पत्नी ने मुदित मन स्वागत किया और पूछा, "उस चोर को आपने खूब पिटवाया या नहीं?"

"कौन से चोर को?" मजिस्ट्रेट साहब के कान खड़े हो गये.

"क्यों, जो पकड़ा गया. आपने ही तो आदमी से खबर भिजवायी थी और मुर्गियां मंगवायी थीं." श्रीमतीजी बोलीं.

इधर मजिस्ट्रेट साहब का और बुरा हाल. न घर के रहे न घाट के. रास्ते भर यही सोचते आये थे कि अब घड़ी तो मिलेगी नहीं, चलो जाड़े में मुर्गी पर हाथ फेरकर ही संतोष करें. और यहां तुर्रा यह कि घड़ी भी गायब और मुर्गी भी उड़ गयी. वे मन मसोसकर रह गये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोध...
जिससे कि आप दूसरा बच्चा आने से पहले, अपने एक बच्चे की जरूरतें पूरी कर सकें

आपके बच्चे को अच्छे पालन-पोषण, प्यार, देखभाल तथा पूरे ध्यान की विशेष जरूरत रहती है। इनमें से बहुत सी बातें पैसे से ही पूरी होती हैं। जब तक आप अपने पहले बच्चे की जरूरतें पूरी न कर लें तब तक दूसरा बच्चा लाने की न सोचें। और इसमें निरोध आपकी सहायता करता है।

निरोध प्रयोग कीजिये
सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक जीवन के लिये—

वितरक : ब्रुक-बॉण्ड, लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर, आई. टी. सी., टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आईडीपीएल, स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट, इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और आरासन मैच इण्डस्ट्रीज।

davp 83/222

Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

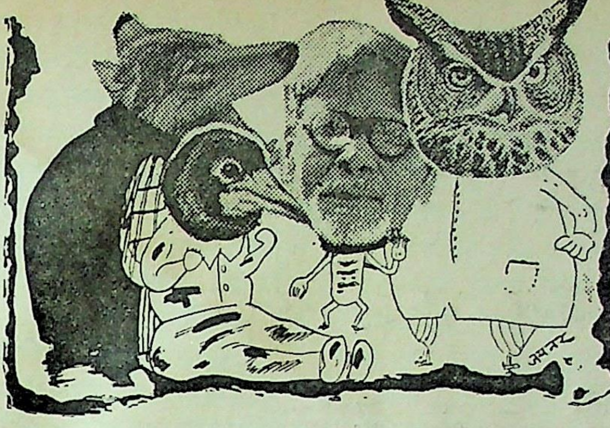

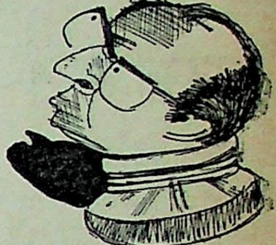

सरकार के तीनों अंग

▫ रवींद्रनाथ त्यागी

कुछ भी कहने से पहले मैं यह बात स्पष्ट कर दूं कि सरकार से मेरा अभिप्राय यहां देश की सरकार से है; देश के प्रसिद्ध जादूगर सरकार साहब से नहीं. वैसे वस्तुस्थिति यह है कि कभी-कभी हमारी सरकार भी जादू के काम कर जाती हैं, पर ऐसा करना उसका पेशा नहीं है और उससे जो जादू के काम हो जाते हैं, वह संयोगमात्र से ही हैं. हमारी सरकार के तीन अंग हैं, जिनके नाम हैं व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी और न्यायपालिका. व्यवस्थापिका कानून बनाती है, कार्यकारिणी उनका पालन करती है और न्यायपालिका उन लोगों को सजा देती है, जो कि कानून का पालन नहीं करते. सरकार शब्द स्त्रीलिंग होता है और उसके तीनों अंगों के साथ भी यही स्थिति है. व्याकरण का यह मजाक मेरी समझ में कभी नहीं आया, जिसके अनुसार पुलिस और सेना तक स्त्रीलिंग ही होती आयीं.

व्यवस्थापिका जो है, वह सबसे पहले आती है. आम चुनाव होते हैं और जीते हुए उम्मीदवार या तो सरकार बनाते हैं या फिर विपक्ष में बैठते हैं. हमारे देश में चुनाव जो होते हैं; वे एकदम ईमानदार एवं निष्पक्ष होते हैं और हमारा देश संभवतः संसार का अकेला देश है, जहां कि चुनाव करते समय धर्म, जाति और गुट जैसी पिछड़ी हुई चीजों पर

अभी-अभी एक समाचार पढ़ने को मिला कि एक अदालत ने सौ के करीब लावारिस गधे गिरफ्तार किये, जो बाद में जमानत पर रिहा किये गये. अगली बार जो पेशी होगी, उसमें वे सारे गधे भी अदालत में हाजिर होंगे, ताकि सरकार के तीनों अंगों का काम सुचारू रूप से चल सके! प्रस्तुत है सरकारी मशीनरी का यथातथ्य चित्रण करती व्यंग्य कथा——

कोई ध्यान नहीं दिया जाता. चुनाव जीतने के बाद विधायक लोग कानून बनाते हैं, सरकार से सवाल पूछते हैं और सरकार की नीति निश्चित करते हैं. हमारी विधान सभाओं में जूता नहीं चलता और न वहां कोई हुल्लड़बाजी होती है. सारे विधायक शांति एवं शिष्टता के साथ काम करते हैं. कभी-कभी कोई विधायक मजाक-पसंद एवं होनहार भी होते हैं और उनका जिक्र करना भी जरूरी है. एक ऐसे ही विधायक जब हाल में से उठकर बाहर की दिशा में भागे तो स्पीकर की मेज पर रखी गदा को भी उठाकर ले गये. मगर ऐसी दिलचस्प घटनाएं बहुत कम होती हैं और आमतौर पर विधायक लोग जो होते हैं, वे शालीन, शांतिप्रिय और अनुशासन का पालन करनेवाले ही होते हैं. अखबारवाले कभी-कभी झूठी घटनाओं का जिक्र बहुत बढ़ा-चढ़ाकर करते हैं, पर वैसा करने से वास्तविकता पर तो कोई असर नहीं पड़ता.

विपक्ष के लोग कभी-कभी सरकार से काफी टेढ़े सवाल पूछते हैं, मगर सरकार उनका जवाब इस प्रकार देती है कि सच होते हुए भी उसके वे जवाब वस्तुस्थिति पर कोई प्रकाश नहीं डालते. विधायिका की यह परंपरा काफी पुरानी है. लायड जार्ज कहा करते थे कि पार्लियामेंट में दिये गये जवाब सच्चे हों, संक्षिप्त हों और कुल मिलाकर ऐसे हों कि प्रश्न पूछने वाला सदस्य उत्तर पाकर भी मामले के बारे में उतनी ही जानकारी रखे, जितनी कि वह उत्तर पाने से पहले रखता था. कुछ सदस्यों को प्रश्न पूछने की आदत होती है, जिसके कारण वे काफी लोकप्रिय रहते हैं. लोकप्रियता के संदर्भ में आपको मैं बता दूं कि एक प्रदेश में एक विधायक इतने लोकप्रिय निकले कि आसपास के हिजड़ों ने अपनी ढोलक लेकर उनका घिराव कर लिया. इन सब बातों के अतिरिक्त बड़ी बात यह है कि हमारे देश के विधायक लोग इतने निष्ठावान हैं कि वे किसी भी कीमत पर दल बदल नहीं करते. उनके लिए सिद्धांत जो है, वह बड़ी चीज है और उसके सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्रिमंडल में शामिल होना कोई मायने ही नहीं रखता.

जहां तक हमारी कार्यकारिणी का प्रश्न है, स्थिति यह है कि उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये, वह कम ही है. मामूली मामलों पर भी इतनी गंभीरता से विचार किया जाता है कि फाइल निबटाने में वर्षों लग जाते हैं और स्थिति यह रहती है कि जब तक फाइल पर निर्णय लिया जाता है, तब तक समस्या जो होती है, वह वैसे ही हल हो जाती है. हमारे यहां कार्यकारिणी जो है, वह एकदम स्वतंत्र है और पूंजीपति या राजनीतिक दल उस पर कोई प्रभाव नहीं डालते. पुलिस है कि एकदम गांधीवादी है. दिन दहाड़े बैंक लूटे जाते हैं, स्त्रियों को जलाया जाता है, हरिजनों पर अत्याचार किये जाते हैं, पर पुलिस है कि इन मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करती. दिल्ली में दूध की एक बोतल में इतना बड़ा चूहा निकला कि उसकी खबर अखबारवालों तक पहुंच गयी. अखबारवाले तो चाहते ही हैं कि कुछ चलता रहे ताकि अखबार की बिक्री पर कोई असर न पड़े. अखबारवाले अगर ज्यादा शोर मचाते तो कार्यकारिणी उस चूहे वाली वारदात पर एक कमीशन बिठा देती, जिसकी अंतरिम रिपोर्ट कोई तीन साल बाद मिलती. इतनी अवधि में उस चूहे का क्या हस्र होता, इस पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता. कमीशन के सामने गवाही देते-देते बेचारे का कचूमर निकल जाता.

हमारी कार्यकारिणी की खास बात यह है कि वह किसी भी स्तर पर रिश्वत नहीं लेती. रिश्वत और सिफारिश ये दो चीजें ऐसी हैं कि जिनका हमारे देश में दस्तूर ही नहीं है. नतीजा यह है कि सारे विभाग नितांत ईमानदारी और स्वतंत्रता से अपना कामकाज करते हैं. कार्यतत्परता तो इतनी है कि एक जगह आग लग गयी और तुरंत टेलीफोन करने के बावजूद आग बुझाने वाली गाड़ी सिर्फ पांच घंटे लेट पहुंची. हमारी रेलें हैं कि एकदम ठीक समय पर चलती हैं और हमारी जनता भी इतनी जिम्मेदार किस्म की है कि लोग विपत्ति पड़ने पर भी रेल की चेन नहीं खींचते. उन्हें डर रहता है कि चेन खींचने से गाड़ी कहीं लेट न हो जाये? वैसे भी हमारा रेल विभाग अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है, जो कि एक उचित बात है. डाक विभाग जो है, वह तो और भी ज्यादा कर्तव्यपरायण और निष्ठावान है. एक खत को बीस मील की दूरी पार करने में तीन वर्ष लग गये, मगर डाक विभाग को देखिए कि देर कितनी भी लगी हो, मगर उसने चिट्ठी को खोया नहीं और उसे सही व्यक्ति तक पहुंचाकर ही दम लिया.

हमारी कार्यकारिणी ने गांवों के क्षेत्र में विशेष काम किया है और यह हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का ही परिणाम है कि गांव वाले आज इतने खुशहाल हैं. सारा देश अमीर और साक्षर हो गया है और शराब, फौजदारी और डकैती वगैरा से एकदम मुक्त हो गया है. चकबंदी, सहकारिता और इस तरह के बाकी महकमे जो अंग्रेजी जमाने में बेहद बेईमान हुआ करते थे, वे सब के सब अब एकदम ईमानदार हो गये हैं और गांव वालों का जीवन स्तर उठाने में रात-दिन जुटे रहते हैं. बाढ़ और सूखा––ये दोनों विपत्तियां अब मात्र इतिहास की चीजें रह गयी हैं, जिसका सारा श्रेय हमारे अफसरों को जाता है. बच्चों की पैदावार कम करने की दिशा में भी काफी काम किया गया है, जिसके कारण हमारी आबादी की समस्या भी लगभग खत्म हो गयी है. यह कार्यकारिणी की ही हिम्मत है कि जिसने देश को पूरी तरह बदल दिया. देश में सांप्रदायिक दंगे अब नहीं होते और इसका श्रेय भी राजनीतिक नेताओं और कार्यतत्पर कार्यकारिणी को ही जाता है. आइए, हम सब अपनी पिछली टांगों पर खड़े हों और कार्यकारिणी की सफलता के उपलक्ष में तालियां बजायें.

कार्यकारिणी की आशातीत सफलता के दो कारण हैं. पहला कारण तो यह है कि सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति बेहद ईमानदारी से की जाती है और उस संदर्भ में रिश्वत या सिफारिश का कोई महत्व ही नहीं रह गया है. दूसरा कारण है कि सरकार अपने अधिकारियों की खुशहाली का पूरा ध्यान रखती है, जो एक बेहद जरूरी चीज है. एक प्रदेश में सरकार ने एक ऐसे अधिकारी को प्रमोशन एवं क्षमादान दिया, जिसे कि अदालत अपराधी घोषित कर चुकी थी और जिसे सजा भी सुना दी गयी थी.

आइए, अब थोड़ी-सी चर्चा न्यायपालिका की भी कर लें. अदालतों के बारे में दो बातें कहनी बहुत जरूरी हैं. पहली बात तो यह है कि हमारे देश में फिलहाल अगर कहीं सच बोला जाता है तो वह सिर्फ अदालतों में ही बोला जाता है. अदालत ही एक ऐसा स्थान बचा है, जहां कि सच बोला जाता है, पूरा सच बोला जाता है और सच के अलावा कुछ नहीं बोला जाता है. सारे मुकद्दमें बेहद ईमानदारी से चलते हैं और अंत में चलकर जो कुछ भी होता है, वह न्यायसंगत ही होता है. जज साहब और वकील लोग मिलकर वह काम करते हैं, जो कभी हंस किया करता था. दूध का दूध और पानी का पानी. अदालतों के बारे में 'दूसरी' जरूरी बात जो

गुस्ताखी और क्षमा

□ बलबीर त्यागी

इस बार भी 'सधन्यवाद' आपकी किसी अन्य रचना का हम स्वागत करेंगे, की स्लिप के साथ रचना लौट आने पर एक उभरते लेखक बंधु बौखलाये हुए संपादक के कार्यालय में पहुंचे और अपनी रचनाओं के साथ लगायी गयी सभी स्लिपों को संपादकजी के सामने मेज पर पटकते हुए झुंझलाहट भरे स्वर में बोले, "क्या मजाक है श्रीमान? आपने पहली रचना लौटाते हुए किसी स्तरीय रचना का आग्रह किया था और अब स्तरीय रचना भेजी तो यह स्लिप!"

संपादकजी आंखों से जरा-सा चश्मा खिसकाकर मुस्कराये, "तब आपकी रचना हमारी पत्रिका के स्तर की नहीं थी और अब हमारी पत्रिका आपकी रचना के स्तर की नहीं. यदि कहीं गुस्ताखी हुई है तो क्षमा चाहूंगा."

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहनी है, वह यह है कि हमारे देश में मुकद्दमे जो हैं, वह कम से कम वक्त में तय कर दिये जाते हैं. आपको जानकर खुशी होगी कि फिलहाल भारत जैसे विशाल देश में सिर्फ नौ लाख बारह हजार मुकद्दमे ऐसे हैं, जो विचाराधीन हैं. बाकी जो मुकद्दमे थे, वे तो कभी के खत्म कर दिये गये. सब से पुराना जो मुकद्दमा है, वह सन उन्नीस सौ तीस का है यानी कि वह अभी भी सिर्फ पचास वर्ष पुराना है. उत्तर प्रदेश के एक अकेले जिले में लगभग बाइस हजार मुकद्दमे तो ऐसे विचाराधीन हैं, जो कि सिर्फ फौजदारी के हैं. इतने लंबे-चौड़े देश में आपको और क्या चाहिए?

अदालतों में कभी-कभी काफी मजे की बातें होती हैं. प्रख्यात हास्य-व्यंग्य लेखक हेनरी सिसील ने तो अपना सारा साहित्य कानून और अदालतों को ही लेकर लिखा है. हमारे यहां भी अदालतों में कभी-कभी काफी नाटकीय बातें की जाती हैं. अंग्रेज़ी जमाने में तो एक अदालत ने डाकगाड़ी का इंजन ही अटैच कर दिया था. जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर आयी, अदालत के हरकारे ने अदालत का जो हुक्म था, वह इंजन के बायलर पर चिपका दिया. गाड़ी थी कि वहीं खड़ी रही. स्टेशन के अधिकारियों ने कलकत्ते को टेलीफोन किया, जहां कि ईस्ट इंडियन रेलवे का हेडक्वार्टर था. वहां से रेलवे के वकील ने टेलीफोन पर ही मुकद्दमे की पैरवी की. उसने बताया कि अदालत ने भी जो चीज अटैच की है, वह एक सरकारी संपत्ति है और अदालत का यह कानूनी फर्ज है कि वह अपनी संपत्ति को उठवाये और उसे सरकारी मालखाने में जमा करे. अदालत ने जब यह दलील सुनी तो इंजन पर से हुक्म हटवाया और गाड़ी जो थी, वह आगे चली. अभी-अभी एक समाचार पढ़ने को मिला कि एक अदालत ने सौ के करीब लावारिस गधे गिरफ्तार किये, जो बाद में जमानत पर रिहा किये गये. अगली बार जो मुकद्दमे की पेशी होगी, उसमें वे सारे गधे भी अदालत में हाजिर होंगे.

चर्चा को यहीं खत्म करता हूं, क्योंकि सरकारी बातों को आप एक सीमा के बाहर नहीं ले जा सकते. सरकार के जो हाथ हैं, वे बड़े लंबे हैं. व्यवस्थापिका जो है, उसके अधिकार इतने व्यापक हैं कि वह चाहे तो आपको जेल भी भिजवा सकती है. कार्यकारिणी के पास 'आफिशियल सीक्रेट्स एक्ट' है, जिसके पीछे सब कुछ छिपा है. अदालत है, वह अपनी मान हानि के लिए आप पर मुकद्दमा चला सकती है और आपको सजा दे सकती है. अब आप ही बताइए कि ऐसी स्थिति में देश का एक जागरूक नागरिक इश्क करने के अलावा और कुछ करे तो क्या करे? □

चलते-चलते

फणीश्वरनाथ रेणु से उनके एक मित्र ने कहा, "तुम जब भी नशे में रहते हो तो हमेशा मूर्ख जैसी बातें करते हो." इस पर रेणुजी ने कहा, "मैं नशे में मूर्ख जैसी बातें करता हूं यह एक अस्थायी बात है और तुम हमेशा मूर्ख जैसी बातें करते हो, यह एक स्थायी बात है."

—जीवन कमल

भारत सरकार

नौवहन और परिवहन मंत्रालय

(हिन्दी अनुभाग)

भारत सरकार ने हिन्दी में नौवहन और परिवहन से संबद्ध विषयों जैसे, 1–चार्टरिंग 2–नौवहन और जहाज निर्माण 3–समुद्री इंजीनियरिंग 4–राजमार्ग इंजीनियरिंग 5–अंतर्देशीय जल परिवहन 6–पत्तन और गोदी श्रमिक 7–सड़क परिवहन 8–शिपयार्ड 9–दीपघर और दीपपोत आदि पर हिंदी में मौलिक व मानक पुस्तकें लिखने के लिए वर्ष 1982-83 में डा. वासुदेव शरण अग्रवाल पुरस्कार (दस हजार रुपये) और डा. मोतीचंद्र पुरस्कार (पांच हजार रुपये) देने की घोषणा की थी. इस योजना में अब उन पांडुलिपियों, पुस्तकों पर भी विचार किया जायेगा जो विभिन्न भारतीय भाषाओं से हिंदी में 14 सितंबर 1982 से 13 सितंबर 1983 के बीच की अवधि में अनूदित/प्रकाशित की गई होंगी. ये पुस्तकें नीचे लिखे पते पर **31 मार्च 1984 तक** भेज दी जानी चाहिए.

गोविन्द जी मिश्र
संयुक्त सचिव, भारत सरकार
कमरा नं. 515
परिवहन भवन
संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110001.

डीएवीपी 700/155/83

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

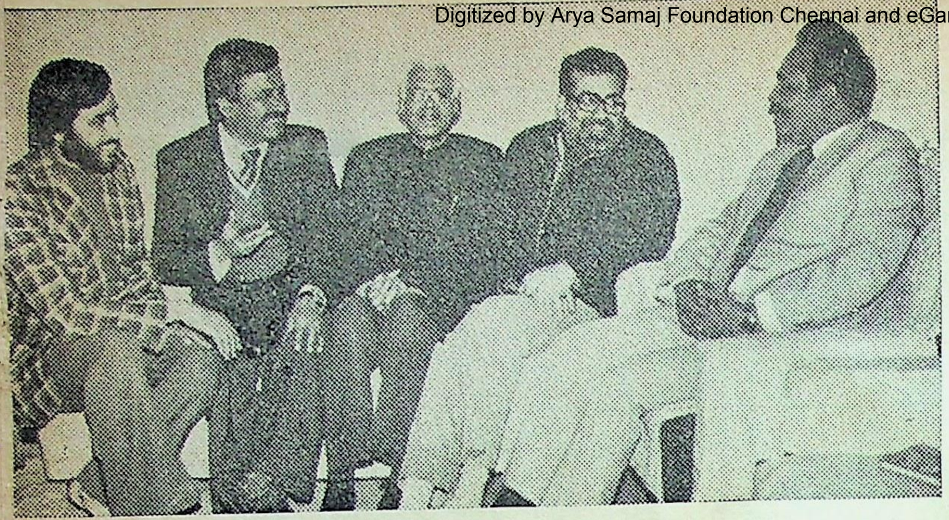

पीढ़ियां आमने-सामने

बीस फरवरी, १९८४ के दिन, व्यंग्य और व्यंग्यकारों के संदर्भ में —विजेंद्र स्नातक, नरेंद्र कोहली, शेरजंग गर्ग, प्रेम जनमेजय, और हरीश नवल में हुई बातचीत

नरेंद्र कोहली : आम धारणा है कि अच्छा लेखक अच्छे पाठक पैदा करता है. मुझे कभी-कभी लगता है कि पाठकों की ऊंची अपेक्षाएं अच्छा लेखक पैदा करती हैं. विचार तो जन-समूह के होते हैं, लेखक उन्हें अभिव्यक्ति देता है. हम लोग यह मानते हैं कि आधुनिक व्यंग्य हरिशंकर परसाई से आरंभ होता है. उनसे पहले परंपरा के रूप में यद्यपि भारतेंदु और बालमुकुंद गुप्त जैसे लोग व्यंग्य लिखते रहे थे, किंतु न तब व्यंग्य इतना लोकप्रिय हुआ और न ही अच्छे व्यंग्यकार पैदा हुए. तो क्या स्वतंत्रता से पहले लोगों के मन में व्यंग्य के अनुकूल भूमि नहीं थी...?

प्रेम जनमेजय : नाटकों को ही क्यों लेते हैं. प्रेमचंद को लीजिए, उनकी कहानियों में भी बहुत व्यंग्य है.

नरेंद्र कोहली : व्यंग्यात्मक-कथाओं को छोड़ो. शुद्ध व्यंग्य-कथा को ही लो. प्रेमचंद व्यंग्यकार नहीं थे. पर बालमुकुंद गुप्त बाकायदा व्यंग्कार थे.

विजयेंद्र स्नातक : भारतेंदु युग तथा द्विवेदी युग के पचास-साठ वर्षों में जितना भी व्यंग्य लिखा गया, उसके दो ही मुद्दे थे. अशिक्षा-अंधविश्वास-रूढ़ियां तथा विदेशी शासन. . . एक तो उनके पास कोई तीसरा मुद्दा ही नहीं था, दूसरे शासन के विरोध में बोलने की अधिक सुविधा नहीं थी, तीसरे उनमें सूक्ष्म व्यंग्य करने की क्षमता नहीं थी. इसीलिए व्यंग्य के अच्छे पाठक भी पैदा नहीं हुए. . . स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक विरोध की सुविधा मिली. इसलिए व्यंग्य के विषयों का क्रम भी बदल गया. आज व्यंग्य का लक्ष्य सबसे पहले राजनीति है और अंत में धर्म.

प्रेम जनमेजय : स्नातकजी ठीक कह रहे हैं, स्वतंत्रता से पहले का राजनीतिक व्यंग्य अप्रत्यक्ष था. अब वह प्रत्यक्ष हो गया है. राजनीति का स्वरूप भी बदला है. परसाई, शरद जोशी और नरेंद्र कोहली इत्यादि ने अपने व्यंग्यों से उस 'राजनीतिक नेता' को उपहास्पद बना दिया है—जो स्वतंत्रता से पहले सम्मानीय था. पाठक के लिए यह नयी बात थी. हमारी पीढ़ी के लेखक के समय, हमारा पाठक यह सब कुछ जानता था. राजनीतिक भ्रष्टाचार उसके लिए अज्ञात नहीं था. इसीलिए हमारे लिए विषय जैसे सीमित-से होने लगे. . .

नरेंद्र कोहली : सामग्री का अभाव हो रहा है क्या?

प्रेम जनमेजय : नहीं, अभाव नहीं. पर राजनीतिक भ्रष्टाचार के उद्घाटन का अब विशेष अवकाश नहीं है.

शेरजंग गर्ग : प्रेम ठीक कह रहा है. अब स्थिति यह नहीं है कि व्यंग्यकार ने अपने लिए तीन विषय चुन लिये और उन पर लिखते चले गये. इससे तो लेखक के चुक जाने की स्थिति आ ही जाती है. . . वैसे मैं राजनीति के साथ-साथ नौकरशाही को भी जोड़ूंगा. हमारे यहां जितना विकास हुआ उतना ही भ्रष्टाचार बढ़ा. मदन वात्स्यायन की वह कविता है न, जो उसने अपने अफसर के विषय में लिखी है, बड़ी सूक्ष्म है. . . कि मेरा अफसर भिन्न प्रांत का है, इसलिए मेरी मानसिकता को नहीं समझता. वह इस बात का बदला मुझसे लेता है कि मैं उसके प्रांत का नहीं हूं. परसाई का **'भोलाराम का जीव'** भी क्लर्क की मानसिकता को प्रकट करता है. जहां सूक्ष्म व्यंग्य नहीं, वहां व्यंग्य का दुरुपयोग है. मैं उसे व्यंग्य की अश्लीलता कहता हूं. मोटे स्थूल विषय पर व्यंग्य, व्यंग्य नहीं है. व्यंग्य एक जीवन-दृष्टि है. **'राग दरबारी'** को लो, जीवन के सारे क्षेत्रों को व्यंग्य की दृष्टि से देखा गया है. विषयों के आधार पर व्यंग्य और अव्यंग्य के क्षेत्र नहीं बांटे जा सकते. आजकल तो यह व्यंग्य-दृष्टि लेखकों के साथ-साथ पाठकों में भी विकसित हुई है. पाठक भी कटाक्ष और प्रहार करते हैं. कॉलम लिखनेवालों के लिए विषय सीमित हो, तो हो, स्वतंत्र रूप से लिखनेवालों के पास वैविध्य है.

हरीश नवल : विषयों को लेकर, अपनी पीढ़ी का दर्द मैं बताता हूं आपको, स्वतंत्रतापूर्व लेखकों ने स्वतंत्रता पाने के लिए व्यंग्य लिखा, स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी ने स्वतंत्रता सहेजने के लिए. पर जब हमारी पीढ़ी आयी तो राजनीति का व्यंग्य विदा हो चुका था. हमें खोजना पड़ता है कि कहां व्यंग्य हो. . .क्योंकि ज्यादातर व्यंग्य तो अब अभिव्यक्त हो चुका है. हमारी पीढ़ी को विषय का यह कष्ट है.

प्रेम जनमेजय : मैं जब विषय सीमित होने की बात करता हूं तो मेरा तात्पर्य

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नहीं है. जीवन जिधर बढ़ेगा, उधर ही विसंगतियां उभरेंगी. व्यंग्य तो विसंगति पर होता है. पर हर विषय का एक दौर होता है. हमसे पहले का दौर था—राजनीति. पर अब राजनीति की विसंगतियां अभिधा हो चुकी हैं. इसलिए हमारी पीढ़ी राजनीति के साथ अन्य विषयों पर भी लिख रही है. यह सायास नहीं है—जीवन के नये कोण सामने आते ही हैं. जैसे सांप्रदायिकता तो बहुत पुरानी चीज है, पर अब उसके नये कोण हमारे सामने आ रहे हैं. पहले लोग मानते थे कि साम्यवाद आ जायेगा तो सारी समस्याओं का समाधान हो जायेगा. पर अब साम्यवादी देशों में भी लोगों को विसंगतियां दिखाई पड़ रही हैं. . .

नरेंद्र कोहली : विषय सीमित हो गये या खोजने पड़े. . . दूसरी किसी विधा का आदमी तो ऐसी बात नहीं कहता. इसका अर्थ है कि कहीं कुछ है. एक बार बालेंदु शेखर तिवारी ने अपनी पत्रिका **'अभीक'** में बड़े जोर से घोषणा की थी कि हमारी पहली पीढ़ी के सारे वरिष्ठ व्यंग्यकार चुक गये हैं और अपने-आपको केवल दुहरा रहे हैं. इस दृष्टि से नयी पीढ़ी उनसे आगे बढ़ गयी है. खैर, मैं इसे पीढ़ियों की कन्फ्रंटेशन की बात नहीं मानता. मैं अपनी या पूर्ववर्ती पीढ़ी के बचाव में यह भी नहीं कहता कि वे लोग पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं. पर यदि वह पीढ़ी अपने-आपको दुहरा रही है तो व्यंग्य के क्षेत्र में यह विषय या सामग्री की सीमा है क्या?. . . व्यक्तिगत रूप में मैं स्वयं को कुछ मुक्त पाता हूं. क्योंकि मैं केवल व्यंग्यकार नहीं हूं.

विजयेंद्र स्नातक : विषय तो किसी भी विधा के लिए न निर्धारित हैं, न सीमित. इसलिए मात्र राजनीति ही व्यंग्य का विषय नहीं है. अभी एक शब्द आया था 'विसंगति,' उसका मूल मुद्दा भ्रष्टाचार है. सूक्ष्मदर्शी व्यंग्यकार को वह हर क्षेत्र में दिखाई पड़ रहा है. विषय का टोटा नहीं है.

प्रेम जनमेजय : राजनीति भी तो पहले से व्यापक हो गयी है.

विजयेंद्र स्नातक : तुम लोग कहते हो कि पहले विषय अधिक थे, फिर भी पहले व्यंग्य अधिक नहीं लिखे गये. क्यों? पहले व्यंग्य को कला की दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त नहीं था.

प्रेम जनमेजय : आलोचकों के कारण. . .

विजयेंद्र स्नातक : हां, आलोचकों ने व्यंग्यकार को सही सम्मान नहीं दिया.

प्रेम जनमेजय : क्या उसका कारण यह नहीं था कि व्यंग्य के साथ हास्य भी मिला हुआ था?

विजयेंद्र स्नातक : हास्य से मिला हुआ था. . . और हास्य भी उच्च कोटि का नहीं था. इसलिए उस समय उच्चकोटि का व्यंग्य पैदा नहीं हुआ. भारतेंदु ने **'अंधेर नगरी'** लिखी, उसमें व्यंग्य भी है. पर उसका व्यंग्य बहुत सपाट है. . . आज का व्यंग्कार उससे कहीं अधिक सूक्ष्म और सटल लिखता है.

"मैं तो लिख लेने के बाद देखता हूं कि रचना किसके लिए है. मैंने तो एक रचना रची है. मैं इस प्रकार खंडित नहीं हूं कि इस उम्र के लिए लिखूंगा, उस उम्र के लिए नहीं!"

प्रेम जनमेजय : गद्य में न सही, पर कविता में तो कबीर व्यंग्यकार था.

विजयेंद्र स्नातक : कबीर की बात अलग है. हम भारतेंदु और द्विवेदी युग की बात कर रहे हैं. कबीर जैसा व्यंग्यकार तो आज भी पैदा नहीं हुआ. है.

प्रेमजनमेजय : नहीं, ऐसी बात तो नहीं है कि कबीर जैसा व्यंग्यकार ही अभी पैदा नहीं हुआ.

हरीश नवल : मेरे विचार से तो कबीर ने दो टूक बात कहकर व्यंग्य को नष्ट ही किया है. व्यंग्यकार तो बड़ी लाग-लपेट के साथ, मीठे ढंग से. . . कबीर ने तो सीधी गालियां ही दी हैं.

विजयेंद्र स्नातक : ऐसा नहीं है. वह व्यंग्य ही करता है. वह कहता है **'ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरो हुआ खुदाय. . ."**

प्रेम जनमेजय : यह गाली नहीं हो सकती?

नरेंद्र कोहली : दी भी है तो इसमें नाराज होने की क्या बात है. आज हम कहते हैं कि हमारी परिस्थितियां इतनी दूषित हैं कि शुद्ध यथार्थ कह देने पर भी कटाक्ष हो जाता है. और फिर अनुभूति की सघनता भी महत्वपूर्ण तथ्य है. शब्दों का चुनाव तो लेखक के भीतर उबलते हुए आक्रोश के अनुकूल ही होगा न. कबीर ने जिस गहराई से महसूस किया, उसी प्रबलता से कहा. . . अब कबीर के बराबर का कोई व्यंग्यकार है या नहीं...यह जानने के लिए आवश्यक है कि उस व्यंग्यकार के बाद भी पांच सौ वर्ष गुजर जाने दिये जाये.

प्रेम जनमेजय : मैं यह नहीं कह रहा कि कबीर व्यंग्यकार नहीं है और न ही मैं यह मानने को तैयार हूं कि कबीर के समान प्रहारक, दूसरा कोई व्यंग्कार ही नहीं हुआ.

शेरजंग गर्ग : कबीर की बात केवल धार्मिक रूढ़ियों के संदर्भ में आयी थी. और फिर किसी को छोटा-बड़ा करने की कोई आवश्कता भी नहीं है. वैसे सोचो, व्यंग्यकार इतना संकीर्ण और सीमित होकर क्यों लिखे. नरेंद्र कोहली ने बहुत सही कहा कि वह केवल व्यंग्यकार नहीं है. बात तो विसंगति को देखनेवाली दृष्टि की है. फिर विषयों की कोई कमी नहीं है. वैसे अब व्यंग्यकार से पाठकों की अपेक्षाएं भी बढ़ गयी हैं. वह अपने-आपको फूहड़ विषयों से ही क्यों बांधे. व्यंग्यकार को अब मनोरंजन के लिए नहीं पढ़ा जाता. उसे विचारक और चिंतक की मान्यता दी जाती है. हरिशंकर परसाई को लोग पढ़ते हैं तो इसलिए, क्योंकि उससे दिमागी खुराक मिलती है. रवींद्रनाथ त्यागी तो बहुत आनंद देता है. . .

प्रेम जनमेजय : आनंद देता है.

शेरजंग गर्ग : उसमें कटाक्ष भी हैं.

प्रेम जनमेजय : मूल आनंद है, कटाक्ष तो 'भी' में है.

शेरगंज गर्ग : हां, केशवचंद्र वर्मा हैं. श्रीलाल शुक्ल हैं, नरेंद्र कोहली हैं. . .

हरीश नवल : रामनारायण उपाध्याय.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेरजंग गर्ग : राधाकृष्ण हैं. और भी लोग हैं. ये लोग अगंभीर परिस्थितियों के अगंभीर लेखक नहीं हैं. अगंभीर दिखाई पड़ते हुए भी इन्होंने गंभीरता को कहीं नहीं छोड़ा है. चुटकी भी लेंगे तो साहित्यकार के बड़प्पन के साथ. वे चिंतक के रूप में उभरकर आये हैं. आज के व्यंग्यकार की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि आज उसका मूल्यांकन जीवन-द्रष्टा साहित्कार के रूप में होने लगा है, जो पहले नहीं हुआ.

प्रेम जनमेजय : मैं मात्र इतना कहना चाह रहा था कि केवल व्यंग्य लिखने की कोई मजबूरी नहीं है. श्रीलाल शुक्ल, नरेंद्र कोहली, रवींद्रनाथ त्यागी... सभी कई विधाओं में लिख रहे हैं. वस्तुतः सामग्री की अपनी मांग और प्रवृति मिलकर तय करते हैं कि रचना किस विधा में हो.

नरेंद्र कोहली : और मैं यह पूछ रहा था कि पीढ़ियों के विरोध को लेकर इतना हंगामा है तो तुम लोगों को भी पीढ़ियों का विरोध अखरता है या नहीं?

प्रेम जनमेजय : वस्तुतः व्यंग्य लिखने-वाले हैं ही इतने कम कि इनमें पीढ़ियों के विरोध की बात ही नहीं उठती. दूसरी बात है कि विरोध तब हो, जब हमारी पिछली पीढ़ी ने हमें गलत रूप में प्रस्तुत किया हो या यह मानो कि हमारी पिछली पीढ़ी का चिंतन गलत था. हमें तो पिछली पीढ़ी ने अच्छी विरासत दी है...

हरीश नवल : प्रश्न यह नहीं था. देखिए, कहानी और कविता के क्षेत्र में बहुत सारे आंदोलन उठे और गिरे. कई तरह की पीढ़ियां आयी और गयी. पर व्यंग्य अभी जैसा चल रहा है, वैसा ही चल रहा है. पीढ़ियों का टकराव तब होगा, जब हम में से कोई, नया आंदोलन लेकर उठेगा...

नरेंद्र कोहली : मैं इस बात को और स्पष्ट करने के लिए पूछ रहा हूं... 'नयी कहानी' वालों ने स्वयं को प्रेमचंद से जोड़ा. जो वैचारिक धरातल पर अलग हैं, उन्हें छोड़ दें तो प्रेमचंद की परंपरा में आनेवाली पीढ़ियों में, आज तक प्रेमचंद से कोई विरोध नजर आता है? सिवाय इस बात के कि कुछ परिस्थितियां बदल गयीं, कुछ विषय बढ़ गये...

हरीश नवल : भेद क्यों नहीं है. देखिए, 'सामाजिक कहानी' कहें तो प्रेमचंद का नाम आता है. 'मनोविश्लेषणात्मक कहानी' हो तो इलाचंद्र जोशी का नाम आता है. दार्शनिक कहानी हो तो जैनेंद्र का. व्यंग्य में ऐसा नहीं है.

प्रेम जनमेजय : व्यंग्य का वर्गीकरण दूसरे रूप में होगा... परसाई और शरद जोशी का व्यक्तित्व राजनीतिक है, रवींद्रनाथ त्यागी का साहित्यिक. इनके विषयों को लेकर आप व्यंग्य का भी वर्गीकरण कर सकते हैं. हमारी पहली ही पीढ़ी है—परसाई और शरद जोशी. यहां तो उन दोनों में ही टकराहट है. चाहे विसंगतियां वही हों... पर परसाई व्यवस्था को ही बदलना चाहेंगे, शरद जोशी विसंगतियों का विरोध तो करते हैं, पर प्रजातांत्रिक व्यवस्था को बदलने पर उनका बल नहीं है.

नरेंद्र कोहली : प्रेमचंद और प्रसाद को ले लो. दोनों समकालीन थे, और दोनों के व्यक्तित्व में बहुत अंतर था. पर इसमें पीढ़ियों का तो कोई सवाल ही नहीं है.

हरीश नवल : वही तो मैं कह रहा हूं कि हमारे किसी व्यंग्यकार ने कोई पंथ, कोई स्कूल नहीं चलाया. जबकि कहानी और कविता में भरमार है.

शेरजंग गर्ग : स्कूल के लिए अधिक संख्या में छात्रों की आवश्यकता होती है. व्यंग्य अभी पूरी तरह एक आंदोलन है... उसमें अलग स्कूलों की गुंजाइश नहीं है. वह तो अभियान है...

हरीश नवल : अभी तो उस पर बाहरी हमले ही बहुत हैं. बहुत सारे लोग तो उसको विधा ही नहीं मान रहे. परसाईजी ने खुद भी कहा है कि यह एक शैली है.

विजयेंद्र स्नातक : ठीक है. शैली तो है शैली ही विधा के रूप में परणित होती है.

शेरजंग गर्ग : मगर अब तो समस्या यह हो गयी कि **'राग दरबारी'** को व्यंग्य मानें या उपन्यास या व्यंग्य-उपन्यास. अभी यह स्पष्ट नहीं है.

प्रेम जनमेजय : विधा के रूप में तो हम इसे स्थापित कर चुके हैं...

विजयेंद्र स्नातक : विधा को अभी छोड़ो. मैं पहले पीढ़ियों की बात निबटाना चाहता हूं. आज के सारे व्यंग्यकारों की एक पीढ़ी है. पहले व्यंग्य को साहित्य में सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं था, इसलिए जो लोग व्यंग्य लिख भी सकते थे, उन्होंने भी नहीं लिखा, इस स्थिति के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार हैं—हास्य कवि. फूहड़ हास्य. आज के हास्य कवियों में भी कुछ लोग व्यंग्य लिख सकते थे, पर उन लोगों ने अशिक्षित लोगों में अपनी लोकप्रियता को अधिक वरेण्य माना. चांदनी चौक के सारे लालाओं का मंडल इकट्ठा हो जाये तो क्या वह आपका व्यंग्य समझेगा? नहीं समझेगा. वे काका हाथरसी को सुनेंगे, क्योंकि उसमें हास्य है. हास्य उस बात में होता है जिसको आप पहले से जानते हैं. शास्त्र का नियम है कि पहले से ज्ञात को पुनः कहने से लोकप्रियता मिलती है, पर व्यंग्य लोकप्रियता तक ही रुकना नहीं चाहता. वह उससे गहरे जाता है.

हरीश नवल : पर साहित्य के इतिहास के लेखक अभी व्यंग्य को निम्न श्रेणी का साहित्य ही मान रहे हैं.

विजयेंद्र स्नातक : आपने तो सपाट बात कह दी, पर जो लोग व्यंग्य को देख रहे हैं...

शेरजंग : पिछली पीढ़ी के गद्यकार न सही, पर कवियों ने तो अच्छे व्यंग्य लिखे हैं. **'भारत भारती'** की लोकप्रियता का तो कारण ही यही था कि उसमें मैथिलीशरण गुप्त ने तीखे-प्रहार किये थे.

हरीश नवल : वैसे हमारे हास्य कवि वे ही लोकप्रिय हुए हैं, जिनके पास व्यंग्य था, पर जिन व्यंग्यकारों के पास हास्य अधिक है, वे लोकप्रिय नहीं.

प्रेम जनमेजय : हमने अपनी पीढ़ी की बात कह ली, स्नातकजी ने अपनी पीढ़ी की. पर परसाई और शरद जोशी के बाद की पीढ़ी हैं, नरेंद्र कोहली. इनकी पीढ़ी की तो बात आयी ही नहीं. उस समय परसाईजी आदि का लेखन बड़ा ताजा था और व्यंग्य को मान्यता

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिलाने का संघर्ष चल रहा था. परसाई, शरद जोशी और श्रीलाल शुक्ल के नाम का आतंक था. उसके मुकाबले में अपने-आपको खड़ा करना और उन लोगों से कुछ हटकर लिखना, बड़ा मुश्किल था. डा. कोहली ने शिल्प के क्षेत्र में **'पांच एब्सर्ड उपन्यास'** और **'शंबूक की हत्या'** से स्वयं को स्थापित तो किया, पर इनकी पीढ़ी के सामने विषय और शिल्प दोनों को लेकर चुनौती तो रही होगी. तब इन्होंने क्या महसूस किया.

नरेंद्र कोहली : व्यंग्य के क्षेत्र में आने पर तो मैंने भी महसूस किया था कि तीन नाम––हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवींद्रनाथ त्यागी. . .

प्रेम जनमेजय : श्रीलाल शुक्ल नहीं?

नरेंद्र कोहली : नहीं. ये तीन नाम लोगों की जुबान पर इस बुरी तरह चढ़े हुए थे कि चौथा नाम वे लेना नहीं चाहते थे. यहां तक कि श्रीलाल शुक्ल का भी नहीं. हालांकि मुझे यह कहने में रत्ती भर संकोच नहीं है कि हिंदी के सारे व्यंग्य-साहित्य में से यदि केवल एक कृति का नाम लेना हो तो मैं 'राग दरबारी' का नाम लेता हूं. मैं तो यह भी स्वीकार करता हूं कि मैंने श्रीलाल शुक्ल और हरिशंकर परसाई से व्यंग्य के संस्कार ग्रहण किये. मतलब यह कि इनसे मेरा तादात्मय हुआ तो अपनी बात कहने के लिए एक प्रकार की प्रेरणा भी मिली, ट्रेनिंग भी, संस्कार भी, जब मन में खीझ बहुत बड़ी तो व्यंग्य लिखा––चाहे **'पांच एब्सर्ड उपन्यास'** हो चाहे **'आश्रितों का विद्रोह'** चाहे **'शंबूक की हत्या'**. जब खीझ निकालकर कुछ सहज हुआ तो कथा-तत्व ने अपनी ओर खींचा. मैंने तुम लोगों को कुरेदा था, क्योंकि स्वयं मैंने पीढ़ियों के रूप में कभी नहीं सोचा. व्यंग्य को छोड़ दें. उपन्यासकार के रूप में यदि मैं हजारी प्रसाद द्विवेदी, यशपाल या अमृतलाल नागर के साथ बैठा तो अपनी सारी श्रद्धा के बावजूद वे लोग मेरे लिए आतंक कभी नहीं बने. उम्र में मुझसे छोटा कोई उपन्यासकार मेरे पास आयेगा तो व्यक्ति के रूप में चाहे उसे मैं कम उम्र का मानूं, पर उपन्यासकार के रूप में मुझे वह छोटा नहीं लगेगा. किसी भी विधा को लिया जाये––मुझे तो लेखकों में पीढ़ी का फर्क लगता ही नहीं है. शैलियां जरूर बदल जाती हैं, पर बाकी तो एक प्रवाह है. उसमें मुझसे पहलेवाले नाम भी हैं, मैं भी हूं और मेरे बादवाले भी हैं. मुझे यह तो लगता है कि मेरे बेटे के तौर-तरीके मुझ-से कुछ भिन्न हो गये हैं, पर उसका और मेरा कन्फ्रंटेशन है, ऐसा मुझे कभी नहीं लगा. व्यक्तिगत राग-द्वेष मैं समझता हूं––कोई अपने-आपको स्थापित करने के लिए उठा-पटक कर रहा है, तो भी समझता हूं, अन्यथा साहित्य तो समता का क्षेत्र है कन्फ्रंटेशन का नहीं. मैं तो पीढ़ियों के विरोध को समझना चाहता हूं.

प्रेम जनमेजय : विरोध नहीं है, पर पीढ़ियों का अंतर तो है. हरिशंकर परसाई ने एक बार प्रतीकात्मक रूप में इस प्रकार कहा था कि हमने अपने पिता को नंगा नहीं देखा पर हमारी अगली पीढ़ी देख सकती है. फिर सामाजिक परिस्थितियां बदलती हैं, उसके कारण विषय बदलते हैं. इसलिए एक दौर की रचनाओं में समानता होती है. आगे आनेवालों के पास भिन्न और दूसरी दृष्टि होती है.

> **"परसाई व्यवस्था को ही बदलना चाहेंगे, शरद जोशी विसंगतियों का विरोध तो करते हैं, पर प्रजातांत्रिक व्यवस्था को बदलने पर उनका बल नहीं है."**

नरेंद्र कोहली : मैं भी तो मानता हूं कि जो कुछ साहित्य में मैं करना चाहता हूं, वही यदि मेरे बाद का लेखक समर्थ ढंग से करता है तो मुझे लगेगा कि वह ठीक ही कर रहा है. मैं नहीं कर पाया! . . .और विरोध को सचमुच मैं समझ नहीं पाता. . . जैसे बच्चों की कहानी है. कुछ लोग मानते हैं कि बच्चों के लेखक ही भिन्न होते हैं. पर मैं तो लिख लेने के बाद देखता हूं कि रचना किसके लिए है. मैंने तो एक रचना रची है. मैं इस प्रकार खंडित नहीं हूं कि इस उम्र के लिए लिखूंगा, उस उम्र के लिए नहीं.

विजयेंद्र स्नातक : पीढ़ी का भेद यह नहीं है. पर पीढ़ियों का भेद होता है. द्विवेदी युग की सारी पीढ़ी एक तरह की चीजें लिख रही थी. छायावादी पीढ़ी उनसे भिन्न है. उन्होंने विरोध भी किया, यहां तक कि उस पीढ़ी द्वारा प्रयुक्त शब्दों तक का बहिष्कार किया. व्यक्तियों का विरोध किया. सारी पीढ़ी को नकार दिया. हां, व्यंग्यकारों में इस प्रकार का विरोध अभी नहीं है. यह अच्छी बात है.

नरेंद्र कोहली: किताबों में यह विरोध मुझे भी दिखाई देता है. पर मैं अपने लेखकीय जीवन की बात करता हूं. जैनेंद्र की विचार प्रणाली को मैं स्वीकार नहीं करता.

विजयेंद्र स्नातक : यह पीढ़ी का फर्क है.

नरेंद्र कोहली : आप इसको पीढ़ी का फर्क मानेंगे, लेकिन यशपाल के साथ मेरा वैचारिक मतभेद नहीं है. जैनेंद्र और यशपाल तो एक ही पीढ़ी के हैं. दूसरी चिंतन-प्रणाली की किसी भी पीढ़ी से मेरा विरोध हो सकता है. . . चाहे वह मेरा ही समवयस्क ही क्यों न हो.

विजयेंद्र स्नातक : पीढ़ी की बात हम सामूहिक रूप से करते हैं, व्यक्ति को लेकर नहीं. यह अच्छी बात है कि व्यंग्यकारों में न वसा आपसी विरोध है, न पीढ़ियों का.

शेरजंग गर्ग : विरोध इसलिए नहीं है कि उनका लक्ष्य दूसरा लेखक नहीं, सामाजिक विसंगति है.

प्रेम जनमेजय : अभी पीढ़ियों का विरोध नहीं है, पर एक पीढ़ी में ही व्यक्तियों का विरोध है. जब उन विभिन्न व्यक्तियों को दूसरी पीढ़ी में भी समर्थन मिलने लगेगा तो. .

नरेंद्र कोहली : तो परंपराओं का मतभेद होगा, पीढ़ियों का नहीं.

विजयेंद्र स्नातक : यह तो गुटवाद होगा. पर अभी तो यही मानकर चलो कि व्यंग्य-क्षेत्र में पीढ़ियों का विरोध स्थापित नहीं हुआ है. □

प्रस्तुति : नरेंद्र कोहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ एक गंभीर चिंतन. . .

चारों धाम घरवाली है

के.पी. सक्सेना

अपने मरहूम कृश्ण चंदर एक जगह पे फरमा गये हैं कि 'सेब उसी वक्त तक खुशनुमा लगता है जब तक डाल पे सजा रहे! मैंने कभी डाल पे लगा सेब नहीं देखा!' बचपन से ही पुलिसपंथी रहा हूं! डाल पर से तोड़ लेने का पक्षधर! खैर. . .मतलब पर आइए! . . . एक होती है महबूबा. . . एक बीवी! . . . एक डाल पर लगी, दूसरी कंडिया में एक तरफ पड़ी हुई! हर फागुन से लेकर अगले फागुन तक सारे कते-रुबाई, गजल-नजमें उसी पर लिखी जाती हैं ताबड़तोड़, जो अपने कने नहीं है! हिंदी में तुलसीदास के बाद डायरेक्ट बाबा गोपाल प्रसाद व्यास ही ऐसे भये हैं जिन्होंने कंडिया में पड़े सेब, उर्फ घरवाली को पहचाना है और सवटये-ववटये लिखे हैं! . . . फिर उनके बाद सींधी तरह उस फिल्मी गीत लेखक का नंबर आता है जिसने 'चारों धाम घरवाली है'. . . लिखा! यह एक अमर कृति है! . . . चारों धाम ही इंतहा हैं! . . . घरवाली की शान में उस वक्त तक इससे बेहतर चीज नहीं लिखी जा सकती जब तक कोई पांचवां धाम ईजाद न हो! . . . यों बुनियादी तौर पर मैं भी, आप ही की तरह, गाहे-बगाहे अगल-बगल ताक-मजाक का आदी हूं! . . . जब तक उम्र रही, करेक्टर पर मक्खी नहीं बैठने दी! अब मक्खी की तलाश में हूं कि आये और मेरे करेक्टर पर कृपया बैठे! . . . मगर मक्खियों का भी एक आदर्श होता है! ताड़ जाती हैं कि अगर इसके करेक्टर पर बैठ भी गये तो चुगद साबित होगा! . . . कहीं और बैठें! . . . कई लेखक हैं जो कई-कई इश्कों के बावजूद बौराए हैं! . . .

हंगरी में एक लेखक भये हैं जो चाल-चलन से भी हंगरी (भूखे) थे! हर नयी रचना लिखने के दौरान बगल में एक अदद ताजा चीज बिठाये रखते थे कि जरा आंच मिलती रहे! मगर रचना पोस्ट करने से पूर्व लिफाफा हमेशा बीवी से ही चिपकवाते थे, ताकि रचना जरा शुभ बनी रहे! वे हंगरी में थे. . प्रेरणाएं उपलब्ध थीं! . . . मैं अगर ऐसा करने लगूं तो शायद बेगम हजरत महल पार्क में महबूबाओं के लिए शामियाना लगवाना पड़े, और लोग समझें कि नारी-मुक्ति आंदोलन चल रहा है! . . . फी रचना एक 'प्रेरणा' भी रखिए, तो अब तक मेरी तीन हजार के लगभग छप चुकी हैं! . . . इतनी तो शायद अमिताभ बच्चन नहीं जुटा सकते! . . . अब जहां तक घरवाली के साहित्यिक योगदान का प्रश्न है, मैं गर्व से कह सकता हूं कि उसने आज तक मेरी एक भी रचना नहीं पढ़ी. . . और हर रचना की तारीफ की! . . . चारों धाम किस्म की घरवालियां ऐसी ही होती हैं! . . . हिंदी के जनवादी तथा अन्य 'वादी' साहित्य में यही एक कमी है कि चारों धाम किस्म की नेक और उम्दा घरवालियों को उचित स्थान नहीं मिल रहा है! . . .

▣

साहित्य में घरवाली का योगदान क्या है? और क्या वजह है कि हमारे साहित्यकार चारों धाम-वाली जैसी बीवी के रहते हुए भी उससे कोई लाभ न उठाकर, किसी दूसरी की तरफ ही देखते रह जाते हैं?

कहीं-कहीं घरवाली आयी भी है तो तड़ से एक 'वह' भी आ गयी है और त्रिकोण बनाकर हाथ पोंछ लिये हैं! . . . बासु भट्टाचार्य की फिल्म बनाकर धर दिया है हिंदी साहित्य को! . . . भई, आप एक दफे घरवाली को लेकर चलो तो! साहित्य न बने तो घरवाली वापस. . . पुनः अपनी लाइन पर आ जाओ! ट्रायल कर लेने में क्या हर्ज है! . . . सौंदर्य और मेकअप की लीसपोत की जितनी उपमाएं हैं, मसलन. . . भोली-भाली हसीन शाम, चेहरा जैसे हाथी दांत पर खुदा नक्श. . . सांस जैसे कोई नगमा, होंठ जैसे पत्ती पर ठहरी ओस की बूंद वगैरह, आप पत्नी पर प्रयोग करो! फिर देखो कि रचना कहां की कहां जा पहुंचती है! . . .

अगलों ने कहा कि खूबसूरत औरत को देखने से दिमाग और नेक औरत को देखने से दिल खुश होता है! आप सर्वे कर देखो चाहे! नेक हमेशा नाइंटी परसेंट बीवी ही होती है! . . . बकाया दस परसेंट पर आप जनवादी साहित्य नहीं लिख सकते! . . . जिसने कभी घूंघट का बोझ नहीं उठाया मियां, वह साहित्य का बोझ भला क्या उठायेगी! . . दूसरे के शेर को आप सिर्फ गुनगुना सकते हैं, अपना नहीं कह सकते! . . . उधर बीवी, चाहे जितनी शिलाखंड हो, एक मुरस्सा नज्म है जिसे लंबे अरसे तक आप धारावाहिक

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छपवा सकते हैं! . . . कि गलत कह रहा हूं? . . . बड़ी सहूलियतें रहती हैं पत्नी को साहित्य में लपेट लेने पर! मसलन मेरे ही करीबी दोस्त हैं, सुपरिचित उर्दू कथाकार रामलाल! . . . एक दफे बड़ी जजबाती कहानी लिख रहे थे! एक जगह पे अटक गये! सीन यह था कि शौहर की बेवफाई से तंग आकर उनकी हीरोइन मन ही मन कुछ गालियां देती है! कौन-सी गालियां? . . . जनानी गालियां भी अलग होती हैं! . . . अब किसी गैर औरत से पूछें कि आप कौन-सी गालियां देंगी, तो बुढ़ापे में भरी कालोनी में छीछालेदर! . . . चुनांचे अपनी ही बीवी काम आयी! उसने कुछ धुली-पुंछी सुना दीं . . . अगले ने वे ही लिख लीं . . . कहानी इंडिया और पाक में हिट हुई! . . . न होती घरवाली मौका-ए-वारदात पर तो एक अच्छी भली कहानी, गालियों के अभाव में दम तोड़ देती न!

अपने डॉ. राही मासूम रजा हैं! 'आधा गांव' और 'दिल एक सादा कागज' तथा 'ओस की बूंद' में एक से एक खुशबूदार तथा मखमली जनानी गालियां नगीने जैसी जड़ी पड़ी हैं. क्या उनकी मौलिक हैं? . . . रहे नाम अल्लाह का! . . . आड़े वक्त पर भाभी ने ही मदद दी होगी न! मगर कोई क्रेडिट नहीं दिया!

पटी पड़ी हैं ऐसी मिसालें कि जहां लेखन के पतले क्षणों में घरवाली ही गैया की पूंछ साबित हुई है और वैतरणी पार करायी है मगर साहित्य के 'पत्नीवादी' पक्ष पर खुली तरियों कभी ईमान नहीं लाये! . . . प्रोग्रेसिवों को अलग रखकर, अर्ध-प्रोग्रेसिवों और नान-प्रोग्रेसिवों (मेरे जैसे) से मेरी अपील है कि इस बार होली के आसपास फुर्सत में भाभी का चेहरा ध्यान से देखें और उसमें रचना संबंधी संभावनाएं ढूंढें! . . . रिंद के रिंद रहे, हाथ से जन्नत न गयी! और क्या चाहिए? . . . □

● 72, नारायण नगर, राम सागर, लखनऊ (उ. प्रदेश)

घोड़े को संस्कृत पढ़ानेवाला पंडित

▣ डॉ. सुरेंद्र प्रसाद शाह

बहुत दिनों के बाद राजपुरोहित ज्ञानदेव को अपने मित्र की याद आयी. दूसरे दिन वे मित्र के पास पहुंच ही गये. देखा, एक जीर्ण-सी कुटिया में कुछ छात्रों को पढ़ा रहे हैं. पूछा, "मित्र, कैसे हो?"

"देख ही रहे हो, दो-चार छात्रों को पढ़ाकर किसी तरह गुजारा कर रहा हूं. तुम्हारी तरह बुद्धि-चातुर्य तो है नहीं, जो कहीं राजपुरोहित बन जाऊं." धर्मदेव ने व्यंग्य करते हुए कहा.

"देखो, ऐसा करो कि परसों तुम राज-दरबार में आओ. मैं कोई उपाय निकालता हूं. तुम्हें बस इतना ही करना है कि राजा जो पूछें तुम्हें 'हां' में उत्तर देना है."

धर्मदेव भी गरीबी से बुरी तरह तंग आ चुके थे. बोले, "ठीक है, जैसा तुम कहो."

तीसरे दिन राजपुरोहित ने आते हुए मित्र को देख राजा से कहा, "महाराज, आज प्रातः मेरी भेंट एक विलक्षण पंडित से हुई. और पंडित तो मनुष्य को संस्कृति की दीक्षा देते हैं, वे दो वर्षों में घोड़े को संस्कृत बोलना सिखा सकते हैं."

राजा ने साश्चर्य पूछा, "क्या यह सच है?"

"महाराज, यह एकदम सच है. मैंने उस पंडित महाराज को आज आपके दरबार में आने का निमंत्रण भी दिया है. लीजिए वे आ भी गये," राजपुरोहित ने धर्मदेव की ओर इंगित करते हुए कहा.

राजा ने इनसे पूछा, "पंडित महाराज, क्या यह सच है कि आप ...?"

धर्मदेव जी विस्मित हो गये, मित्र की बात याद आ गयी बोले, "हां, महाराज!"

राजा इस अद्भुत पंडित को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुए. अपने मंत्री को आज्ञा देते हुए बोले, "मंत्रीजी, इन पंडित महाराज के रहने एवं भोजन आदि की उत्तम व्यवस्था की जाये. साथ ही, इन्हें संस्कृत-दीक्षा के लिए एक सुंदर घोड़ा भी दिया जाये. जरा देखें कि घोड़ा किस तरह संस्कृत बोलता है."

राजा के आदेशानुसार पंडित धर्मदेव के रहने के लिए एक विशाल भवन तथा सेवादि के लिए सेवकों की व्यवस्था कर दी गयी.

लेकिन, सारी सुख-सुविधाएं पाकर भी पंडित धर्मदेव प्रसन्न न हुए. उन्हें लगता जैसे उनकी मृत्यु का निश्चित प्रबंध हो गया है. वे उदास होकर बैठे थे कि राजपुरोहित आ गये. पूछा, "अब क्यों उदास हो मित्र? घर से भाभी, बाल-बच्चों को ले आओ और छककर तर माल खाओ."

"लेकिन दो वर्ष के बाद घोड़े का परीक्षण होगा, तब क्या होगा? क्या घोड़ा भी कहीं संस्कृत सीखता है?" व्यग्र होकर पंडित धर्मदेव ने पूछा.

"बस, यही तो बात है. देखो मित्र, राजा के पास बुद्धि-विवेक नहीं होता. वह केवल भ्रम में जीता है. होशियार वही है, जो उन्हें बुद्धिमान बताकर मूर्ख बना दे. सारे चापलूस यही करते हैं. बस, हम भी यही कर रहे हैं." राजपुरोहित ने उन्हें समझाना चाहा.

"पर, मुझे तो अपनी मौत के सिवा कुछ नजर नहीं आता, तुम बताते नहीं कि आखिर दो वर्षों के बाद मेरा क्या होगा."

"कहा न, तुम्हारा कुछ नहीं होगा. अभी दो वर्षों का लंबा समय है. कौन जानता है कि दो वर्षों में राजा मरेगा या घोड़ा मरेगा. यदि राजा जीवित ही रहा तो यह घोड़ा मर जायेगा. इसका जिम्मा मैं लेता हूं. फिर नया घोड़ा आयेगा और वह भी दो वर्ष बीतते-बीतते मर जायेगा. फिर तीसरा. . . और इस तरह तुम्हारा सुख-चैन सब दिन बना रहेगा." पंडित धर्मदेव को लगा जैसे उसके ज्ञानचक्षु एकाएक खुल गये हैं. □

● प्राध्यापक, हिंदी विभाग, मारवाड़ी कालेज, भागलपुर-812001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनंदन

मुजतबा हुसैन

हमें नहीं मालूम कि इतिहास के किस मोड़ पर अभिनंदन करने का शुभारंभ हुआ और क्योंकर हुआ. इतिहासकारों ने इस मामले में एक गंभीर मौन साध रखा है. यों भी इतिहासकार ऐसे नाजुक मामलों में मौन साध लेते हैं, लेकिन इतना जरूर जानते हैं कि जबसे हमने होश संभाला है, अपने आसपास किसी न किसी का अभिनंदन होते हुए देखा है. आज इसका अभिनंदन है तो कल उसका अभिनंदन.

साहित्य हो या राजनीति, कला हो या समाज सेवा, जीवन के हर क्षेत्र में अभिनंदन करने की गुंजाइश निकल सकती है. बस, इसके लिए अनुभवी आंख की जरूरत होती है. पहले अभिनंदन उस व्यक्ति का किया जाता था, जिसने जीवन के किसी न किसी क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा की हो, अब हर उस व्यक्ति का अभिनंदन किया जाता है, जो अभिनंदन करने का भारी खर्च बरदाश्त कर सकता है.

एक बात का स्पष्टीकरण और भी कर दें कि अभिनंदन करने के लिए अभिनंदनीय सज्जन का बूढ़ा और नाकारा होना जरूरी होता है, क्योंकि अभिनंदन करने का उद्देश्य किसी की सेवाओं को स्वीकृति देना या मान्य करना होता है और सेवाओं को मान्य करना उसी वक्त हो सकता है, जब वह आदमी बूढ़ा हो जाये और आम लोगों को यह यकीन हो जाये कि यह व्यक्ति और आगे सेवा नहीं कर सकेगा. गोया अभिनंदन किसी की सेवाओं के ताबूत में आखिरी कील की हैसियत रखता है. लेकिन हमने देखा है कि बाज लोग अपना अभिनंदन हो जाने के बावजूद अपनी 'सेवाओं' से बाज नहीं आते. यह सरासर हठधर्मी है. मिसाल के तौर पर एक शायर के कलाम से लोग आजिज आ गये और उन्हें देखते ही गलियों में भागने लगे तो बस्ती के चंद अक्लमंदों ने मिलकर फैसला किया कि अब उनका अभिनंदन कर दिया जाये. जैसे-तैसे उनका अभिनंदन किया गया, मगर उसका वांछित परिणाम नहीं निकला, क्योंकि अभिनंदन के बाद वह और घातक शायरी करने लगे और सुनाने के लिए और भी घातक तरीके अपनाने लगे. अभिनंदन करने वाले एक-दूसरे की सूरत देखते रह गये.

अभिनंदन की एक विशेषता यह होती है कि वह अभिनंदनीय सज्जन की जिंदगी में ही मनाया जाता है. मरने के बाद जो चीज मनायी जाती है, उसे आम लोगों की भाषा में 'दिवस' मनाना कहते हैं. अभिनंदन में अभिनंदनीय को चार लोगों के सामने बिठाया जाता है और उसकी जी खोलकर तारीफ की जाती है. यों भी हमारे यहां मुंह पर तारीफ करने का रिवाज आम है. इससे बड़े फायदे हासिल होते हैं. अभिनंदन करने का सिलसिला शायद शुरू ही इसलिए हुआ कि लोग बिना खौफो-खतर किसी की उसके मुंह पर तारीफ करें और वह चुपचाप बैठा सुनता रहे. अपने बारे में झूठी मगर अच्छी बातें सुनना कौन पसंद नहीं करता. इसलिए अभिनंदन करने के तरीके को इन दिनों इस कदर तरक्की मिली है कि अगर किसी दिन किसी का अभिनंदन नहीं किया जाता तो लगता है कि एक दिन यों ही बेकार हो गया. बल्कि अब तो यह एक अच्छी-खासी कला और

हर साल ये नौजवान इस शहर के किसी बड़े शायर का अभिनंदन करवा देते थे, मगर नियति की विडंबना देखिए कि ये नौजवान जिस शायर का अभिनंदन करते, वह अगले साल तक अल्लाह को प्यारा हो जाता! अभिनंदन परंपरा का विवेचन करती एक रम्य रचना—

अच्छा-खासा पेशा बन गया है.

अभिनंदन के दो प्रकार होते हैं. आज तक अभिनंदन का कोई तीसरा प्रकार नहीं खोजा जा सका. एक अभिनंदन 'जबानी जमाखर्च' का अभिनंदन होता है और दूसरा अभिनंदन रकमी जमाखर्च का होता है. पहले वाले अभिनंदन में अभिनंदनीय महोदय को तारीफ के सिवाय कुछ भी नहीं दिया जाता. इस अभिनंदन पर बड़ी कम लागत आती है, क्योंकि इस प्रकार के अभिनंदन को करने के लिए कुछ श्रोता, कुछ वक्ता, एक सभागार, एक लाउडस्पीकर और फूलों के चंद हारों की जरूरत पेश आती है. अल्ला-अल्ला खैर सल्ला! ऐसे अभिनंदन के लिए अभिनंदनीय महोदय के सिवाय किसी और को भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती. यह बड़ा अहानिकारक प्रकार का अभिनंदन होता है. अभिनंदनीय महोदय अभिनंदन से कुछ दिन पहले से अपने अभिनंदन के निमंत्रण-पत्र बांटने में व्यस्त रहते हैं. और अगर उन्होंने पोस्टर छपवा रखे हैं तो उन्हें रातों में चोरी से शहर की दीवारों पर चिपकाते भी फिरते हैं. अभिनंदन के दिन सभागार में खुद ही दरियां भी बिछाते हैं और बाद में डायस पर चढ़कर यों बैठ जाते हैं जैसे इस अभिनंदन से उनका कोई संबंध नहीं है. एक के बाद एक वक्ता आता है और उनकी तारीफ करके चला जाता है और ये गर्दन झुकाये बैठे रहते हैं. डायस पर पहुंचने के बाद वह अभिनंदन की सारी व्यवस्था से उदासीन हो जाते हैं और सिर्फ अपनी तारीफ सुनने में मगन रहते हैं.

हमें एक बार एक साहब के अभिनंदन समारोह में शामिल होने का मौका मिला था. वक्ताओं ने इन साहब की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवाओं की बेपनाह तारीफें कीं. यों भी अभिनंदन समारोह के वक्ता किसी के व्यक्तित्व में खूबियां तलाश करते हैं जैसे हम जिंदगी में किसी के व्यक्तित्व में अवगुण तलाश करते हैं. लिहाजा उस दिन उनकी उस सारी खूबियों का जिक्र किया गया, जो उनमें सिरे से मौजूद ही नहीं हैं. अभिनंदन के बाद हम उन साहब को मुबारकबाद देने के लिए आगे बढ़े तो हमें लगा जैसे वह इस अभिनंदन से खुश नहीं हैं. वे हमें कुछ उदास-से नजर आये.

हमने कहा, "महाशय, आपका अभिनंदन इस कदर शानो-शौकत से किया गया है कि आपको खुश होना चाहिए, मगर यह क्या कि आपके चेहरे से उदासी बरस रही है."

हमें एक कोने में ले जाकर बोले, "तुम अपने आदमी हो, तुमसे क्या छिपाना? यह जो स्टेज सेक्रेट्री था ना, इसने मुझे बड़ा जबरदस्त धोखा दिया है. मैं इसे कभी माफ नहीं करूंगा."

हमने पूछा, "आखिर बात क्या हुई, यह तो बताइए."

बोले, "भाई, मैंने इसे पच्चीस हारों के पैसे दिये थे और इस धोखेबाज ने मुझे सिर्फ दस हार पहनाये हैं. यकीन न आये तो तुम खुद गिनकर देख लो. और फिर मैंने उसे चमेली के हारों की कीमत दी थी और तुम देख रहे हो कि मेरी गर्दन में गेंदे के फूलों के हार पड़े हैं. यही काम ऐसा था, जो मैं नहीं कर सकता था, इसलिए हारों की जिम्मेदारी इसके सुपुर्द कर दी थी."

हमने कहा, "अब सब्र कीजिए. जो होना था, सो हो चुका. कुदरत को यही मंजूर था. अगर अगली बार कभी आपका अभिनंदन किया जाये तो उस वक्त हारों का मामला भी खुद ही निबटाइए."

बोले, "भैया, अगले अभिनंदन के लिए हमारी बीवी कभी राजी नहीं होगी."

हमने पूछा, "वह क्यों?"

बोले, "बड़ी मिन्नत-खुशामद करके उसे अपने इयरिंग बेचने के लिए राजी किया था ताकि अभिनंदन का जुगाड़ बन जाये. अब भला वह मेरे दूसरे अभिनंदन के लिए अपने और जेवर क्यों बेचेगी? जरा सोचने की बात है."

इस किस्म के अभिनंदन 'जबानी जमा-खर्च' के अभिनंदन की कोटि में आते हैं. कुछ अभिनंदन ऐसे होते हैं, जिनमें जबानी जमा खर्च के अलावा अभिनंदनीय सज्जन को नकद राशि की थैली भेंट करने का भी ऐलान किया जाता है. इस तरह का अभिनंदन करने का शुभारंभ बड़े खुशगवार माहौल में होता है, लेकिन इसकी इतिश्री बड़ी नाखुशगवार होती है, क्योंकि अक्सर होता है कि अभिनंदनीय सज्जन को जो नकद थैली भेंट की जाती है, उसमें 'थैली' ज्यादा 'नकद' कम होता है. ऐसे अभिनंदन के लिए एक 'तैयारी कमेटी' भी बनायी जाती है. इस कमेटी में ढूंढ़-ढूंढकर ऐसे लोगों को रखा जाता है, जिनका अभिनंदन सज्जन से कोई जहनी रिश्ता नहीं होता, इसमें वही लोग होते हैं, जिनकी समाज और बैंक—दोनों में कोई हैसियत होती है. हमें इस वक्त अपने एक पत्रकार मित्र की याद आ रही है, जिनका 'नकद थैलीवाला' अभिनंदन किया गया था. उनसे वायदा किया गया था कि इस अभिनंदन के अवसर पर जो सोविनयर छापा जायेगा, उसके विज्ञापनों की सारी रकम उन्हें दी जायेगी.

● मुज्तबी हुसेन

वे बेचारे अपना अभिनंदन कराने के लिए तैयार हो गये. बेचारे जरूरतमंद भी थे और ऋणदाताओं ने बहुत तंग कर रखा था. जैसे ही अभिनंदन की घोषणा हुई, उन्होंने अपने ऋणदाताओं को अभिनंदन पर टाल दिया कि भैया, अभिनंदन होने दो, फिर सारा ऋण वसूल कर लेना. खैर साहब, अभिनंदन हुआ और हमने देखा कि हॉल उनके ऋणदाताओं से खचाखच भरा हुआ था. जब अभिनंदन के दौरान नकद थैली पेश करने का वक्त आया तो स्वागत समिति के मंत्री ने उनके हाथ में एक बड़ी-सी थैली पेश की. यों लगता था जैसे उस थैली में एक लाख से कम रुपये नहीं होंगे. हमारे मित्र भी उस भारी थैली को संभालकर फूले नहीं समा रहे थे, लेकिन अभिनंदन के बाद जब उन्होंने अपने ऋणदाताओं की मौजूदगी में उस थैली को खोला तो उसमें से उनके अभिनंदन के सोविनयर की एक कापी और विभिन्न कंपनियों के नाम विज्ञापनों के बिल निकल आये. फिर स्वागत समिति के मंत्री की एक पर्ची भी बरामद हुई, जिसमें लिखा था—'आपसे यह वायदा किया गया था कि सोविनयर के विज्ञापनों की रकम आपको नकद थैली के रूप में पेश की जायेगी. लिहाजा सोविनियर की एक कापी और विज्ञापनों के सारे बिल आपके हवाले किये जा रहे हैं. इन बिलों को पेश करके विज्ञापनदाताओं से रकम वसूल कीजिए और हमारा पीछा छोड़िए. हमें और भी लोगों के अभिनंदन करने हैं.'

हमें याद है कि हमारे यह पत्रकार मित्र कई महीनों तक विज्ञापनदाताओं के चक्कर लगाते रहे. कहीं से कुछ मिला और कहीं से कुछ भी न मिला. यद्यपि अभिनंदन हुए दो साल बीत गये, मगर परसों जब वह हमसे रास्ते में मिल गये और हमने पूछा कि कहां जा रहे हो तो मासूम-सी सूरत बनाकर बोले, "यार, कुछ नहीं, बस वही अभिनंदन वाले विज्ञापनदाताओं के पास जा रहा हूं. यार लोगों ने अब तक पैसे नहीं दिये."

ऐसा दीर्घ अभिनंदन किसी का न हुआ होगा, क्योंकि दो वर्ष से यह अभिनंदन जारी है.

बाज लोग अभिनंदन करने के प्रबंध में बड़े पटु होते हैं और ये लोग आमतौर पर लेखकों, शायरों और कलाकारों के ही अभिनंदन करते हैं, क्योंकि यही वे लोग होते हैं, जिन्हें आसानी से बेवकूफ बनाया जा सकता है. आप तो जानते हैं कि लेखक हरदम साहित्य को एक नया मोड़ देने के चक्कर में गिरफ्तार रहते हैं. उन्हें जब भी जरा-सा मौका मिलता है, वे साहित्य को मोड़ देते हैं. तभी तो हमारा साहित्य जगह-जगह से इस कदर तुड़ा-मुड़ा है. जब भी कोई लेखक साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उपर्युक्त किस्म का मोड़ देता है तो अभिनंदन करने में माहिर लोग उसके पास पहुंच जाते हैं और कहते हैं, "अरे साहब, आपने साहित्य को इस तरह मोड़ा है कि आपका अभिनंदन करना जरूरी हो गया है. आप सिर्फ हां कह दें, बाकी की सारी जिम्मेदारियां—जैसे चंदा जमा करना वगैरा हम संभाल लेंगे."

लेखक भी आखिर इंसान ही होता है. फिर कौन अपनी तारीफ सुनना नहीं चाहता. लिहाजा लेखक 'हां' कह देता है और अभिनंदन करने वाले अपने काम में व्यस्त हो जाते हैं. अभिनंदन समारोह में लेखकों की जी खोलकर तारीफ की जाती है. उन्हें इस खुशफहमी में डाला जाता है कि साहित्य में आज जो कुछ है, वह उन्हीं के दमखम से है. अगर वे साहित्य में न रहें तो साहित्य के मैदान में उल्लू बोलने लगें. लेखक को तारीफ मिल जाती है और अभिनंदन के आयोजकों की मुट्ठियां गर्म हो जाती हैं: क्या खूब सौदा नकद है. इस हाथ दे, उस हाथ ले. मगर बाज दफा हालात ऐसे भी पैदा हो जाते हैं, जब लेखक और शायर अपना अभिनंदन कराने के लिए तैयार नहीं होते. यह बात हम अपने जाती तजुर्बे की बिना पर कह रहे हैं. किसी जमाने में हम एक शहर में रहते थे. वहां चंद नौजवान ऐसे इकट्ठा हो गये थे, जिनकी रोजी-रोटी का साधन ही यह था कि वे लेखकों और शायरों के अभिनंदन करायें. हर साल ये नौजवान उस शहर के किसी बड़े शायर का अभिनंदन करवा देते थे, मगर नियति की विडंबना देखिए कि ये नौजवान जिस किसी शायर का अभिनंदन कराते, वह अगले साल तक अल्लाह को प्यारा हो जाता था. तीन शायरों के अभिनंदन हमारी आंखों के सामने हुए और ये तीनों के तीनों शायर देखते ही हमारी नजरों से ओझल हो गये. रफ्ता-रफ्ता बाकी शायरों को भी इसका एहसास होने लगा. जब ये नौजवान चौथे साल चौथे शायर के पास उसका अभिनंदन करवाने के इरादे से पहुंचे तो उसने अपने कान पकड़ लिये और कहा, "साहबो, मेरी बाज खानगी मजबूरियां ऐसी हैं कि मुझे और चार-पांच साल तक इस दुनिया में जिंदा रहना अजहद जरूरी है. अभी तो एक लड़की के हाथ पीले करने हैं और अपने नये काव्य संकलन की बारात निकालनी है. इन सारी जिम्मेदारियों से निबटने में चार-पांच साल तो लग ही जायेंगे. इस बार आप किसी और को मरने का मौका इनायत करें. दूर क्यों जाइए, हजरत नमक मिर्चवी का ही अभिनंदन कर डालिए. अब तो लोग उन्हें मुशायरों में भी नहीं सुनते. अर्से से—हरचंद कहें कि है नहीं है—वाली कैफियत से गुजर रहे हैं. इस साल अगर वह आपके अभिनंदन के द्वारा अपने सच्चे स्रष्टा से जा मिलें तो क्या कहना!"

नौजवानों ने बाद में हजरत नमक मिर्चवी को भी फांसने की कोशिश की, मगर उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि डॉक्टरी सलाह के अनुसार उनका फिलहाल मरना खुद डॉक्टरों के लिए मुनासिब और मुफीद नहीं है.

इधर पांच-छह बरस बीत गये हैं, मगर इस शहर में फिर किसी शायर का अभिनंदन नहीं किया गया और न ही किसी शायर की मौत का परवाना आया. अगर अभिनंदन की ऐसी स्थिति दूसरे शहरों में भी प्रचलित हो जाये तो जरा सोचिए कि मुल्क में किस कदर अमनो-अमान कायम हो जायेगा और लोग किस तरह चैन की नींद सो सकेंगे. □

● अनुवाद : लक्ष्मीचंद गुप्त

यशपालजी का हनीमून

[प्रकाशवती से अमृता प्रीतम की बातचीत से]

मेरे वकील ने और दूसरे शुभचिंतकों ने सलाह दी कि यशपाल के साथ मेरे ब्याह को कानूनी रूप दे दिया जाये. मिस्टर पैंडले वहां डिप्टी कमिश्नर था. उसे दरख्वास्त दी, उसने मंजूर कर ली. मैं, यशपालजी की मां और दो-तीन दूसरे दोस्त, बताये गये वक्त पर कचहरी पहुंच गये. उधर से यशपालजी को जेल में से लाया जाना था, पर सरकार ने उन्हें खतरनाक मुजरिम करार दिया हुआ था, इसलिए हथकड़ियों और बेड़ियों में लाने का हुक्म हुआ. उस वक्त यशपालजी ने इंकार कर दिया कि मैं कचहरी में हथकड़ियां, बेड़ियां पहनकर नहीं जाऊंगा. अब मिस्टर पैंडले के लिए अपनी दी हुई इजाजत का सवाल था, उसने मौके की नजाकत को समझा. कचहरी मुझे अपनी गाड़ी में बिठाकर जेल ले गया, मां और बाकी दोस्त एक टैक्सी में बैठकर जेल पहुंच गये और वहां जेल के एक कमरे को कचहरी बनाकर, मिस्टर पैंडले ने खुद हमारा ब्याह किया.

उस वक्त एक रुपया चार आने कोर्ट-फीस हुआ करती थी, जो हमसे जेल में ही ली गयी. मेरी तरफ से गवाहों के दस्तखत करने के लिए मेरे साथ गये दोस्त थे, यशपाल की मां थीं, पर यशपालजी की तरफ से जेल के दो कैदी बुलवाये गये. हम थोड़ी-सी मिठाई ले गये थे. वह जेल में बांट दी गयी थी. और फिर कमरे के बाहर सी. आई. डी. के आदमी बैठ गये. हमें मिस्टर पैंडले की तरफ से एक घंटा कमरे में बैठकर बातें करने की इजाजत मिल गयी.

पर इस तरह का ब्याह हिंदुस्तान में आखिरी बार हुआ. यह खबर देश भर के सारे अखबारों में भी छपी और बाहर के देशों के अखबारों में भी, जिससे घबराकर ब्रिटिश सरकार ने कानून लागू कर दिया कि आइंदा किसी सियासी कैदी का जेल में ब्याह नहीं होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चचीजान

अतिया परवीन

यों तो चची ने जमाना देखा है, ऐशो-आराम में जिंदगानी बितायी है, मगर इस जमाने का आलम वे देखती हैं तो उन्हें रह-रहकर लगता है कि सारा जहां रसातल को जा रहा है. . . क्या वाकई ऐसा है?––प्रस्तुत है चची की जुबानी उनके जमाने की बानगी––

ईद की सुबह चची आयीं, तो नजहत, अफजाल और नरगिस वगैरा ने उनका मूड खराब कर दिया. जो कसर रह गई थी, वह भैया ने पूरी कर दी. नतीजा यह हुआ कि चची कसम खाकर चली गई कि "अब इस चौखट पर कदम रखूं तो नसीबन की चप्पल से खबर लेना." बाद में खाला जान ने हम सब को खूब डांटा और ऐसे खुशी के दिन भी हम को जब बुरी तरह एक सन्नाटे और एक कमी का एहसास सताने लगा, तो खाला जान समेत मैंने और भैया ने चची के घर धावा बोल दिया.

"चची, अब तक कपड़े नहीं बदले आप ने?" भैया ने पूछा. चची ने उछलकर सुई वाला हाथ सीने पर रख लिया.

"याली. . . याली. . . ऊई भैया, यह कौन-सा करीना है, चुप-चपाते आ जाओ, और एकदम चिल्लाकर कलेजा दहला दो. ."

"घंटी लगा लेतीं चची!" मैंने कहा. चची बिगड़कर बोलीं, "ऊई नोज! क्या मैं कोई गाय-बैल हूं, जो घंटी लगवाऊं बी, बस पानी के अंदर रहो. ज्यादा न उभरो, जो मछेरे का कांटा फंस जाये! आजकल की हवा! ए भाभी, आओ बैसे!" चची ने जल्दी-जल्दी कपड़े सरकाकर खाला जान के बैठने के लिए जगह बनाई, और मुंह की बात भूलकर सुई-धागा, अध-सिला बटुआ तिलेदानी में बांधते हुए बोलीं, "मुझ गरीब बेवा, बेकस के पास है क्या, जो खातिर करूं. लड़का आज बरस-बसर के दिन भी परदेस में पड़ा है. जी ही नहीं चाहा, जो कपड़े बदलती. एक पाव भर सैवइयां मंगवाकर पका ली हैं, कि रीत तो जरूरी है बी! वही खा लो. नये पान कलवा के लौंडे से मंगवाये हैं. हर चीज पर तो खुदा की मार पड़ गई है! अल्लाह कसम, चार पैसे के पांच-पांच लाया है. माथा कूट कर रह गई मैं तो! देखो, यह महंगाई क्या दिखाती है. ए भाभी. एक वह जमाना था कि पैसे की यह बड़ी ढोली मिलती थी. हाथ-हाथ भर के पान! देखकर जी खुश हो जाये! मुंह में रखो, तो एक माप में पिघल जाएं. वह महक, वह मजा जैसे जन्नत के पत्ते हों, और अब खाओ, तो अल्लाह कसम, मालूम होता है, पीपल का पत्ता चबा रहे हैं," भैया बड़े प्यार से कहने लगे, "अख्खाह! आज तो हमारी चची जान के पास क्रीम की महक आ रही है!"

"ए भैया! हजार बार मना किया कि तुम मुझे रंडियों-मुंडियों की तरह जान-आन न कहा करो! एक दफा हमारे मियां मरहूम, अल्लाह उन्हें करवट-करवट जन्नत नसीब करे, बड़े लाड़ में आ कर छुम्मन जान पुकारने लगे. ए, मैं ने अपनी जान पीट डाली. खाना-पानी छोड़ दिया. जब पांव पकड़कर मुआफी मांगी, तब जा कर मानी. . . !"

"ऊ ई बी! मुन्ने भाई ने पैर पकड़े तुम्हारे?" खाला जान ने हैरानी से पूछा और चची तिड़खकर बोलीं, "ए, तो कौन-सा गजब हो गया. बीवी के पैर न हुए मंगिन का खरारा हो गए. ए मियां की इज्जत थी, कद्र थी. खाना पकाकर खिलाती थी. अल्लाह बख्शे उन्हें. रात को घंटा भर तक पांव दबवाते थे. आखिर को मिजाजी खुदा थे. मियां से चाव-चौचले कौन नहीं करता. हमारे मियां तो हमें इत्ता चाहते थे कि नहाने के लिए पानी खुद अपने हाथ से रखते थे. पायजामे में अजारबंद तक डालते थे. बार-बार पूछे जाते-बी! कुछ चाहिए तो नहीं! जाड़े हुए तो इधर निकली, उधर गर्म-गर्म चाय का प्याला मुंह से लगा दिया. हाय! कहां अब वह चाहने वाले. अल्लाह कसम भाभी! केवड़े गुलाब से नहाई थी. वह तो खुदा बख्शे. मटकों में केवड़े गुलाब के अद्धे उंड़ेल दिया करते थे! इन आंखों ने क्या नहीं देखा बी. अब जमाने पर यह मार पड़ी है कि नहाने को तो रहा दूर, चावल में डालने के लिए केवड़ा मुरदा नदीदे की नजर आता है. ए बी, एक तो बैठे-बिठाए आजकल की लौंडियों ने खर्चे भी बढ़ा लिये हैं."

". . . तरह-तरह की क्रीमें लगायें, पाउडर मलें. मुए रंग बिरंगे साबुनों से मुंह रगड़ डालें. ए बेटा, एक दिन जमालमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाव के मेरे लिए वह पान-मूली वाला साबुन उठा लाया.. !"

"ए बी, झूठ न बोलो." —खाला जान मुसकराकर बोलीं, "क्रीम तो खूब लगाती थीं तुम! जहां बैठती थीं, खुशबुएं बिखर जाती थीं!"

"ए कआबा की कसम भाभी! कयामत के दिन रुसियाह (कलंकित) उठूं, अगर क्रीम लगाई हो मैंने!"—चची जल्दी से बोलीं, "हां, कभी-कभी पैरों और पिंडलियों पर जरूर लगा लेती थी और अम्मां की पिंडलियों पर मालिश करती थी. नोज, मेरे दुश्मन लगाते मुंह पर यह चूना. पाउडर जमाल और उस की जान से दूर बड़े लड़के के गब्मे पर छिड़कती थी कि पेशाब की बू न लगे. ए हे मियां, और सुनो!" —चची ने आंखें घुमाते हुए कहा, "घनी-घनी भौंहें तो खूबसूरती की निशानी होती हैं. ए, शायरों ने हजारों अशारें इन्हीं पर कह डालीं, मगर आजकल क्या मार पड़ी है कि समूची भौंहें नोंच डालें और सिंगार करते में पैंसिल से लकीरें खींच लें. तोबा! तोबा!"

"आप ने पैंसिल से लकीरें खींचते देखा किसे चची?" मैंने पूछा. चची को अचानक कोई भूली-बिसुरी दास्तान याद आ गयी. आंखें चमकाकर बोलीं, "ए बेटी, वह मरतजा हुसैन वकील हैं न, जिन के घर एक दफा मैं दावत में गयी थी. अभी कोई अठवारा गुजरा है. लड़के के खतने की नवीद आई. तुम लोग हरदोई गई थीं, तब की बात है. मैं कयामत तक न जाती मगर जमाल के यार-गार ठहरे. चची, ई, चची, कहते जबान थकती है. खुद दरवाजे पर आकर बुला गए. इस से पहले एक छपा हुआ कारट आया था. मुए कागज के पुरजे पर तो मेरी जूती भी न जाती. जब वह सौ-सो खुशामदें कर गए, तब हामी भर ली! गयी. . . !

"ए बी! इस शान से गयी थी, जैसे कोई नवाबजादी! ए हां बी! हाथी लाख लुट जाए, फिर भी सवा लाख टके का! आखिर को मुगल बादशाहों का खून मिला है. आंख के नशे का सुर्ख पायजामा. . . !

"यह बड़े-बड़े पायंचे बगल में दाबकर उतरी, तो अल्लाह कसम सारी महफिल की आंखें जमकर रह गईं. वहां तो मर्द अंगरेजी कारखाना और अंगरेजी फैशन! बाल-बच्चेदार औरतें, चूंडे कटवाये माथे पर बाल बिखेरे घूम रही थीं. कोई आ गयी साड़ी लपेटे! कोई वह अल्लाह की मार उस पर, चूड़ीदार शलवार पहने. . . ए बेटी!" चची की आवाज में हैरानी घुल गई, "अब तो पांयचों में छींट की धज्जी भी लगाई जाने लगी है. अल्लाह की शान है बी! नये-नये फैशन देखने में आ रहे हैं. ए मुझे तो यह पैबंद लगी शलवार हू-ब-हू अपनी नसीबन का गोटदार चूड़ी-वाला पायजामा मालूम हुआ. कअबा की कसम बी! जवान-जहान लौंडियां कैसे-कैसे जंपर पहनें जो कूल्हे पर चिपके पड़े थे, और यह शलवारें चिपकाए ऐसी बुरी लग रही थीं, कि अगर मेरा बस चलता, तो नोच कर फेंक देती."

"खैर, खैर! आप उतरीं, तो क्या हुआ?" भैया बैचैनी से बोले.

"हुआ क्या! हाथों-हाथ सब ले गयीं. मेरे लिए अलग एक मसहरी पड़ी थी. उस पर बैठी. आगे यह बड़ा पांयचों का ढेर! पीछे गावतकिया! एक तरफ खासदार, एक तरफ उगलदान! क्या बताऊं, क्या शान थी बी! सब की सब भौंचक्की मेरी तरफ देख रही थीं.

"इसी बीच में मुझे पेशाब लगा. पहले तो चुपकी बैठी रही. फिर जब रहा न गया, तो वकील की बीवी को बुला कर कहा, बी, मुझे पैखाना बता दो! ए वह कहती, 'क्या बाथ-रुम जाइएगा! मैंने कहा, मैं बथ-रुम-सथ-रुम तो जानती नहीं पाखाने जाऊंगी. . ."

"धीरे से कहा था कि जोर से?" खाला जान ने पूछा और चची चमककर बोलीं, "उंई बीवी, क्या चोरी कर रही थी, जो चुपके से कहती? खैर! उस के साथ गई! ए भाभी! अल्लाह कसम, सारी महफिल की आंखें मेरे ऊपर लगी थीं. काहे को ऐसी शान वाली बीबी देखी होगी. एक दूसरे से खुसर-फुसर किये जाएं. अल्लाह रखे, मुंह में पान था. हाथ में ठसा-ठस मसाले से भरा हुआ कारचोबी बटुआ था. कानों में बेल के फूलों के गुच्छे थे. पैरों में जमाल के अब्बा की लाई हुई जूतियां थीं. . . हाय! हाय! दिल मसल कर रह गया." चची अचानक सजल-नेत्र हो गयीं, "कैसे शौक से जूतियां लाए थे. गरीब के सामने बस एक बार ही पहन सकी. आज तक वैसे ही डिब्बे में बंद रखी हैं. सोचती हूं, जमाल की दुलहिन को दे डालूंगी. ससुरे की कमाई की कोई चीज तो मसरफ में आए.. . . !"

"ए हटिए चची!" मैंने कहा, "वह भला क्या यह सड़ी-सड़ाई जूतियां पहनेंगी. . ."

भैया ने चची से छुपकर मुझे आंख के इशारे से मना किया और जल्दी से बोले, "हां चची! आप वह किस्सा सुनाइए, वकील साहब के यहां का."

"ऊई बेटा! क्या मैं दास्तान-गो हूं, जो किस्से सुनाऊं.

अदब का रहस्य

▣ जगजीत सिंह

हकीम लुकमान अपने अदब के लिये पूरे शहर में मशहूर थे. सारे शहर के लोग उनकी बड़ी इज्जत करते थे. एक दिन हकीम लुकमान के एक मित्र ने उनसे पूछा, आपने इतना अदब और तहजीब कहां से सीखा?"

"बेअदबों और बेतहजीबों से." उत्तर मिला.

मित्र आश्चर्य से हकीम साहब का मुंह ताकने लगा और बोला, "हकीम साहब, आप भी खूब मजाक करते हैं. भला ऐसे लोगों से भी कोई कुछ सीख सकता है."

मित्र की बात सुनकर हकीम लुकमान मुस्कुराते हुए बोले, "अरे जनाब, इसमें हैरानी की क्या बात है? मैंने इन लोगों में जो बुरी बातें देखीं, अपने आपको उनमें दूर रखा. इस तरह अच्छाइयां मुझमें स्वतः आती गईं." □

● सेक्टर 7-70 आर. के. पुरम्, नयी दिल्ली-110022

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में नहीं हैं कोई बात नहीं, हम खुद ढूंढ़ लेंगे...

● व्यंग्य चित्र : बदर

"अल्लाह बचाये इन बालिश्त-बालिश्त भर के गुसलखानों से! ए, वह वकील इत्ते बड़े आदमी, मगर हमाम वही मुर्गी का डरबा! मेरा तो जरी-सी देर में दम ऊब गया! मगर बी, एक बात जरूर है! ऐसा साफ-सुथरा चिकना जैसे शीशा. जी चाहा, यहीं लेट रहूं! हरा-हरा चमकता हुआ दरवाजा देखकर जी खुश हो गया! वह जो वकील की बहन थी, उसने जल्दी से दरवाजे में लगा सफेद लट्टू घुमाया. दरवाजा ऐसे खुल गया, जैसे अली बाबा का फाटक!"

"तुम ने वहां शीशे में मुंह देखा होगा!" खाला मुसकरायीं, तो चची मानों ठुनक कर बोलीं, "ए भाभी,हटो! मैं काहे को आईना देख ने लगी.. . . !"

"हां, चची, यह तो खैर था, मगर वह बताइए, कि गुसलखाने के अंदर गयीं, तो. . . !" भैया बेकरार थे. जल्दी से बोल पड़े. चची का मूड चमक चुका था! इसलिए अंगूठे और कलमेवाली उंगली से सिर खुजाती हुई बोलीं, "ए मियां, क्या देखा, कि बीचों-बीच चीनी का ऐसा बुराक बड़ा-सा चूल्हा बना हुआ है. ए, मैं हक्का-बक्का खड़ी थी कि कदमचे-अदमचे कहां हैं. यह अंग्रेजी की नानी भला मुझे कहां घसीट लायी. आखिर थक-हार कर पूछा, बी, पेशाब कहां करूं? बस इत्ता पूछना थी कि लगी खिलखिल करने! मैंने दिल में कहा, अल्ला तुझे गारत करे. जाहिर में कहा, बहन, मजाख फिर कर लेना. मेरा तो पेट फटा जा रहा है! बोली, यह क्या कदमचा बना है. . . !ए हे, हे! मैं तो देखती रह गयी. अश-अश करने लगी. सिर उठाकर जो ऊपर देखा, तो बड़ी भारी लोहे की पेटी ऐसी लगी. और उस में जंजीर लटक रही है. सोचती रही, अल्लाह यह क्या चीज है. जब उठी, तो फिर यह सोचा, शायद बाहर दरवाजे की घंटी है. लाओ, बजा दूं कि वह लौंडिया दरवाजा खोल दे. उसी ने बाहर से बंद कर दिया था. आग लगे, मेरी समझ में तरीका नहीं आया था. बस जल्दी से बढ़कर जो जंजीर खींची, मानों कयामत आ गयी. ए बेटा, एक मोटा बंबा ऐसा लगा था. इत्ते जोर से गरजा, जैसे मरा हुआ बादल और भल-भल यह मोटी धार से पानी गिरने लगा. मुश्किलकुशा कसम. मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा. समझी यह कि जंजीर खींचने से कुछ टूट-वूट गया. चीख मारकर भागी और दरवाजा पीटकर रोने लगी कि इलाही, अब क्या करूं! सब क्या कहेंगे कि कैसी बदतमीज औरत है. नुकसान कर के रख दिया. बड़ी मुश्किल से उस हश्र के मैदान में सुनवाई हुई. वकील की बीवी भागती हुई आयी, दरवाजा खोलकर मुझे निकाला. अब सारी औरतें, बच्चे-कच्चे मेरे चारों तरफ जमा. क्या हुआ? क्या हुआ? आखिर हवास जमाकर के कहा, बीबी, मुआफ करो! वह तुम्हारी पानी की टंकी का मुंह मुझ से खुल गया. सब पानी बह गया है. . ."

"गजब! गजब!" भैया हंसे जाएं और सिर पीटते जाएं, "हाय, कहीं का न रखा. अब वकील साहब को मुंह किस तरह दिखाएंगे!"

"क्या हुआ?" चची बुरा मानकर बोलीं, "कौन-सा गुनाह कर दिया मैंने?"

"सब लोग खूब हंसते होंगे?" खाला जान हंसती हुई बोलीं, "ऊई बीबी! तुम्हें इतना भी नहीं मालूम था. . . !"

"चची वह टंकी. . . " मैंने मछली की तरह फड़कते हुए कहना चाहा, मगर चची आग-बगूला होकर बोलीं, "चूल्हे में गयी टंकी और भाड़ में गया वह घर. . . मैं क्या जानूं, यह नये जमाने के नये-नये सामान! ए, मैं ने तो कसम खाई है कि अब उस चौखट पर कदम न रखूंगी. . .ए चौखट ही कहां है! जमीन के ऊपर मुआ लोहे का फाटक सलाखोंदार लगा है. . . चौखट हम लोगों के यहां होती है बी! जिस की मिसालें दी जाती हैं. .. ए कौन है दरवाजे पर!" चची अचानक चिल्लायीं, "अल्लाह, तुझे गारत करे!' जमीन का पैबंद हो! मुआ झांक रहा है. . . लेना तो असलम मियां, इस लुच्चे-शोहदे की खबर. . ." चची जूती संभालकर उठी थीं और भैया भी लपके थे कि एक शर्मिंदा-सी परेशान आवाज आई, "ए साहब! खत है खत . . . "

"है! हे! डाकिया है. . ." चची ने जूती फेंककर दोनों हाथों से दिल थाम लिया, "इलाही करे, मेरा बच्चा खैर से हो! आज कितने दिन के बाद बेमुरव्वत ने खत भेजा है. . .लाओ, जल्दी ले लाओ! कलेजे से तो लगा लूं लिफाफा. . ." चची खत पर वारी-कुर्बान हो रही थीं. इसलिए उनकी आंख बचाकर मैं और भैया नौ-दो ग्यारह हो गये. □

● अनुवाद : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल का दौरा

नरेंद्र कोहली

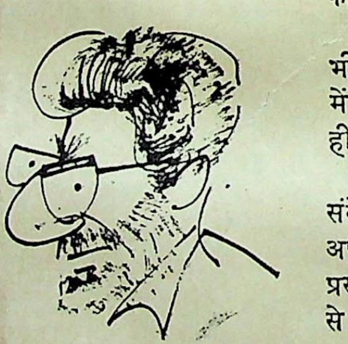

वैसे तो वे मित्र थे, पर एक लेखक था और दूसरा आलोचक. लेखक और आलोचक की मैत्री मुझे वैसी ही लगती है, जैसी नेता और डाकू की. नेता और डाकू में यह तो स्पष्ट है कि कौन क्या है, पर लेखक और आलोचक में इस बात का निर्णय अभी नहीं हो पाया है कि नेता कौन है और डाकू कौन.

मुझे कहा गया था कि मैं अस्पताल में उससे मिल लूं. डकैती की खबर नहीं थी, दिल का दौरा पड़ा था. डाकू से मिलने अस्पताल जाना हो तो मान लेना चाहिए कि उसे पुलिस-मुठभेड़ में गोली लगी है और लेखक से अस्पताल में मिलन हो जाये तो मैं बिना पूछे ही मान लेता हूं कि उसे दिल का दौरा ही पड़ा होगा. वैसे संसार के प्रसिद्ध प्रेमियों की राय है कि दिल का दर्द गोली से भी अधिक पीड़ा-दायक है. पर यहां मामला दिल के दर्द का नहीं, दिल के दौरे का था. दिल का दर्द लेखकों को कभी होता हो तो होता हो, अब तो उन्हें दिल के दौरे ही पड़ते हैं.

जब मैं अस्पताल पहुंचा तो देखा कि लेखक पलंग पर लेटा है और आलोचक उसके पास खड़ा है. यह स्वर्गीय दृश्य देखकर मैं गद्गद् हो उठा. पर यह क्या? लेखक का चेहरा खिला हुआ था और आलोचक का मुखड़ा चुसे हुए आम सरीखा हो रहा था. क्षण भर के लिए तो मुझे भ्रम हो गया कि दौरा आलोचक को पड़ा है और लेखक उसका हाल पूछने आया है.

वैसे अपने देश के अस्पतालों में बहुत गड़बड़ियां हैं. वे लोग जीवित रोगी को शव-परीक्षा के लिए भेज देते हैं और मुर्दे को मेडिकल फिटनेस का सर्टिफिकेट देकर, टैक्सी-स्टैंट पर खड़ा कर आते हैं. पर इतने मूर्ख तो अस्पताल वाले भी नहीं हो सकते कि रोगी को खड़ा कर दें और हाल पूछने आये व्यक्ति के लिए पलंग बिछा दें. मुझे एक क्षण के लिए अपनी दृष्टि पर संदेह हुआ. कहीं ऐसा तो नहीं कि किसी दोष के कारण मुझे पड़ी चीजें खड़ी, और खड़ी चीजें पड़ी दिखाई देने लगी हों. यदि किसी दृष्टि-रोग के कारण ऐसा हो जाता हो कि खड़ा व्यक्ति पड़ा और पड़ा व्यक्ति खड़ा तो दिखाई देगा, पर खड़े व्यक्ति के नीचे पलंग कैसे आ जायेगा? लेखक के नीचे पलंग था! . . . तो फिर ऐसा क्यों है—लेखक अस्वस्थ होकर भी स्वस्थ लग रहा है और आलोचक स्वस्थ होकर भी रोगी? कहीं संवेदना के कारण ही तो लेखक का रोग आलोचक को नहीं लग गया. यदि ऐसा है तो एक लेखक की मृत्यु पर संवेदना के कारण अनेक आलोचकों को मर जाना चाहिए, पर लेखकों का ऐसा सौभाग्य कहां!

वैसे भी आलोचक के पास संवेदना नहीं, वेदना होती है, जो वह बड़ी उदारता से लेखकों को देता रहता है.

"क्या हुआ?" मैंने पलंग के निकट जाकर यथासंभव गंभीर होकर पूछा.

"दिल का दौरा पड़ा है!" लेखक ने कुछ इस प्रकार चहककर कहा, जैसे साधारणतः इस देश में 'बेटा हुआ है!' कहते हैं.

आलोचक ने कुछ नहीं कहा. वह और भी उदास हो गया. लगा, उसके सारे शरीर में पीड़ा ही पीड़ा है और मस्तिष्क में धुआं ही धुआं.

मैंने कुछ समय तक, ऐसे अवसरों पर, संवेदना में कहे जाने वाले शब्दों के लिए अपने मस्तिष्क को खटखटाया, "मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपने बड़े साहस और धैर्य से अपनी इस असुविधा को. . ."

पर लेखक मेरी बात सुनने की मनःस्थिति में नहीं था. उसकी आत्माभिव्यक्ति की इच्छा इस समय भी पूरे यौवन पर थी. बोला, "साधारण दौरा नहीं है. डॉक्टर तो घबरा ही गये थे. . ."

"तुम चुप रहो!" आलोचक ने उसे डांटा, फिर स्वर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक और आलोचक के संबंधों को लकर आदि काल से ही विवाद रहा है और आज तक कोई इस संबंध को लेकर अंतिम बात नहीं कह पाया है. ऋषि-मुनियों ने तो 'नेति-नेति' कहकर इसे ब्रह्म की ही भांति रहस्यमय बना दिया है. इस संबंध के एक महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डाल रहे हैं व्यंग्याचार्य श्री नरेंद्र कोहली.

कोमल करते हुए जोड़ा, "डाक्टर ने तुम्हें बोलने से मना किया है."

लेखक उदास हो गया.

मुझे बड़ा कष्ट हुआ. इतना बड़ा लेखक होकर भी उसे अभी आलोचक की डांट सुनने की आदत नहीं पड़ी. आलोचक का तो काम ही लेखक के स्वर को अवरुद्ध करना है—क्या इतना-सा साहित्य-शास्त्रीय तथ्य भी यह लेखक नहीं समझता.

"अच्छा! अब तुम जाओ." कुछ देर बाद लेखक स्वयं को सहजकर बोला, "बहुत देर हो गयी तुम्हें आये. मेरे पीछे क्या अपना सारा काम-काज छोड़ दोगे."

"नहीं, मैं सोच रहा था," आलोचक बोला, "तुम्हारी देख-माल के लिए कोई आ जाता. . ."

"सुबहवाली उस नर्स की डयूटी खत्म हो गयी है. वह अब आज नहीं आयेगी. लेखक बोला, "उसकी प्रतीक्षा व्यर्थ है. तुम जाओ."

आलोचक ने उसे सख्त नजरों से देखा, "मैं कल सुबह आऊंगा."

आलोचक उदास होकर चला गया. लेखक उसे पीड़ा पहुंचाकर बहुत प्रसन्न दीख रहा था.

मेरे मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे. मैं लेखक से पूछना चाहता था कि वह अपने रोग को लेकर इतना प्रसन्न क्यों है?. . . और आलोचक को क्या कष्ट है?

पर मैं तो उसका हाल पूछने आया था, परिस्थितियों को जानने, लेखक का मनोविश्लेषण करने या लेखक-आलोचक रिश्तों को समझने नहीं. . . और फिर आलोचक ने कहा भी था कि डॉक्टर ने लेखक को अधिक बोलने से मना किया है. . .

लेखक अपने-आप ही बोला, "साला आया था मेरा हाल पूछने और पूछता रहा सुबह की ड्यूटीवाली उस नर्स का. . ."

"पर वे तो आपके मित्र हैं." मैंने उसे याद दिलाया.

"मित्र तभी तक हैं, जब तक अपनी महंगी-महंगी पुस्तकें इन्हें ससम्मान भेंट करते रहो. अपने खर्च पर गोष्ठियां करवाओ और इनके सिर पर अध्यक्षता का मुकुट रखते रहो!" उसने मुझे देखा, "अपनी इच्छा से बोलने लगेंगे या लिखने बैठेंगे तो सैद्धांतिक चर्चा छेड़ देंगे. कहीं किसी का नाम न लेना पड़ जाये. इनकी जीभ न हो गयी, कोई सती सावित्री हो गयी, जो पर-पुरुष का नाम तो लेगी ही नहीं, अपने खसम का नाम भी अपने मुंह से उच्चरित नहीं करेगी. समझते हैं कि जिसका नाम इनके मुंह से निकल गया—वह अमर ही हो गया. किसी को अमर होते यह भला कैसे देखेंगे. . ."

मैं अजबक-सा खड़ा, उसकी बात सुनता रहा. डाकू और नेता की मैत्री को याद करता रहा. समझ नहीं पाया कि दोनों मित्रों में खटक कैसे गयी. कुछ निर्णय नहीं कर पाया. कुछ बोलना ही था, इसलिए अंत में कहा, "इस दौरे से आपको कोई तकलीफ. . ."

इस बार भी उसने मुझे अपनी बात पूरी नहीं करने दी. बोला, "इसमें तकलीफ की क्या बात है! यह तो होना ही था. और जो अपरिहार्य है, उसका प्रतिकार क्या और विलाप क्या! यह तो प्रमाणपत्र है कि अब जवानी की उम्र नहीं रही. अब जाल समेटना शुरू कर देना चाहिए. जीवन का लेखा-जोखा हो जाये—क्या किया? कैसा किया?. . ."

इससे पहले कि वे कोई भजन गाने लगते, मैंने चलने की तैयारी कर डाली, "अच्छा, आप आराम कीजिए. आपको अधिक थकना नहीं चाहिए."

उन्होंने मुझे रोका नहीं, पर बुरा-सा मुंह अवश्य बनाया, जैसे बादाम खाते-खाते मुंह में कोई कड़वी गिरी आ गयी हो.

मैं अगले दिन भी उनका हाल पूछने गया. दृश्य आज भी कल जैसा ही था, पर मुद्राएं बदली हुई थीं. लेखक पलंग पर लेटा था और आलोचक उसके पास खड़ा था. पर आज लेखक था कि पीड़ा से ऐंठा-ऐंठा जा रहा था और आलोचक की बाछें खिली हुई थीं. दोनों की ही मुद्राओं ने मुझे डरा दिया.

अपनी इस रुग्णावस्था में लेखक कहीं ऐंठता-ऐंठता पलंग से गिर पड़ा तो? और इस कारुणिक स्थिति में आलोचक अपने आप को बहुत संभालता-संभालता भी मुस्करा पड़ा तो?. . .

मैंने पास जाकर-धीरे से पूछा, "आज क्या हाल है?"

आज लेखक नहीं, आलोचक बोला, "भगवान का शुक्र है कि उसने हमारे मित्र को बचा लिया."

"क्या अब कोई खतरा नहीं?" मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि मेरे इस वाक्य का क्या अर्थ है.

"अब क्या, तब भी कोई खतरा नहीं था." आलोचक बहुत ही प्रसन्न था, "अरे इसे दिल का दौरा तो पड़ा ही नहीं. सर्वाइकल स्पौंडलाइटस है—मात्र कंधों का दर्द और गर्दन का अकड़ाव. . . "उसने इस दृष्टि से लेखक को देखा, जैसे कोई केंचुए पर नमक छिड़ककर देखता है कि वह ठीक से ऐंठता है या नहीं, "खतरा तो कोई है ही नहीं. उल्टे लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूते बनाम पादुका पुराण

▣ धर्मवीर अरोड़ा 'भारत'

जोड़ासांको में रवींद्रनाथ के पैतृक भवन में अक्सर साहित्यिक गोष्ठियां आयोजित हुआ करती थीं. इन गोष्ठियों में शरच्चंद्र बाबू भी भाग लिया करते थे. सुना गया कि वहां हर बार किसी न किसी का जूता खो जाता था. शरत बाबू एक बार नया जूता पहनकर आये. इस डर से कि कहीं उनका जूता चोरी न चला जाये, उन्होंने जूते को अखबार में लपेटकर हाथ में ले लिया. रवि बाबू ने देखते ही पूछा, "यह तुम्हारे हाथ में क्या है?"

शरत बाबू को कुछ उत्तर देते न बना. वे चुपचाप सिर झुकाए खड़े रहे. रवि बाबू बोले, "लगता है कोई पुस्तक लिये हो. शायद यह पादुका-पुराण है!"

शरत बाबू हतप्रभ! तभी सभा में एक ठहाका गूंज उठा. □

है, फालतू चीजें लिखने से बच जायेगा."

मेरे मन में आया कि मैं पूरे उल्लास से लेखक को अपनी बाहों में भरकर फिल्मी स्टाइल में दो-चार चक्कर देकर कहूं, "यार! तूने तो हमें डरा ही दिया था. चल उठ, तू रोगी नहीं है. चल, कहीं चाट खाने चलते हैं. . ."

पर लेखक के चेहरे की पीड़ा देखकर मुझसे एक शब्द भी नहीं कहा गया. वहां लगता था, जैसे उसे कैंसर हो गया हो.

इस बार भी आलोचक ही बोला, "अच्छा भाई! चलते हैं. तुम अब आराम करो."

"जरा रुको!" लेखक ने बड़ी ही मरियल आवाज में कहा, "कोई आ ले, तो जाना."

"अरे किसी के आने से हमें क्या," आलोचक चटक रहा था, "सुबह की ड्यूटी वाली वह सुंदर नर्स तो अब आज आयेगी नहीं."

"मैं अकेला रह जाऊंगा." लेखक और भी मरी हुई आवाज में बोला.

"तुम्हें तकलीफ ही क्या है." आलोचक ने उसे डांटा, "और फिर यह अस्पताल है, कोई गोष्ठी-कक्ष तो है नहीं कि लेखकों की बरात तुम्हारे साथ रहेगी."

"आओ चलें." आलोचक न केवल स्वयं चल पड़ा, बल्कि उसने बांह से पकड़कर मुझे भी घसीट लिया. आलोचक के सशक्त पंजे में फंसा, मैं केवल इतना ही कर सका कि मुड़कर एक उचटती हुई नजर उस पर डालकर कहा, "अच्छा! चल रहा हूं."

आलोचक सचमुच बहुत प्रसन्न था. इतना कि उसने बाहर आकर मुझे अपने पैसों से पान खिलाया और बहुत मैत्रीपूर्ण स्वर में बोला, "झूठ बहुत दिन नहीं चलता. सत्यमेव जयते."

मेरी समझ में उसकी सत्य की तरंग आयी नहीं. पूछ ही बैठा "सत्य की विजय कहां होती देखी आपने?"

"सब जगह!" उसने पान की पीक को इस तरह थूका जैसे सारे भूमंडल को सत्य के नाम पर कत्थे के रंग से रंग देगा.

मैं भौंचक खड़ा उसकी ओर देखता रहा. यह वही महापुरुष था, जो डंके की चोट कहता था कि 'हमें अच्छी और खराब कृति से क्या लेना. हमें तो हमारी मनचाही पिला दो और जो मन में आये लिखवा लो—अपने पक्ष में चाहो पक्ष में लिखवा लो. किसी के विरोध में चाहो तो विरोध में लिखवा लो.'

वे समझ गये कि मैं उनकी बात की तह तक नहीं जा पाया हूं. मुस्कराकर बोले, "यह साला लेखक, जिसे हम अभी अस्पताल में बिस्तर पर छोड़कर आये हैं. . ."

"हां!" मैंने जिज्ञासावश उनकी ओर देखा.

"क्या समझता है, अपने-आप को!"

मैं समझ गया कि उसका वाक्य प्रश्नवाचक नहीं था. फिर भी मैंने उत्तर दिया, "वह! वह अपने-आप को दिल का रोगी समझता है."

"नहीं! रोगी नहीं समझता!" आलोचक का दर्द अभी विद्यमान था, "वह अपने आप को बहुत चालाक समझता है."

"कैसे?" आज मैं उसकी कोई भी बात समझ नहीं पा रहा था.

"वह समझता है कि हम मान जायेंगे कि उसको दिल का दौरा पड़ा है." उसका स्वर ओज से भर उठा, "यह मानकर कि अब वह मरने वाला है, हम उसके विषय में निबंध लिखने लगेंगे? गोष्ठियों में उसकी चर्चा करने लगेंगे? करुणावस्था में उसकी सहायतार्थ धन इकट्ठा करेंगे? या सरकार से कहकर उसे पुरस्कार दिलवा देंगे. . ."

मैं तो जैसे आकाश से गिरा. मुझे तो पता ही नहीं था कि निबंध, चर्चा या पुरस्कार लेखन पर नहीं, दिल के दौरे पर, मिलते हैं.

मुझे क्या पता था कि आलोचक, लेखक का नाम तब ही लेता है या सरकार उसे तब ही पुरस्कार देती है, जब निश्चित हो जाता है कि अब वह मर ही जायेगा. . .

"हम सारी दुनिया को बतायेंगे." आलोचक कह रहा था, "कि इसे दिल का दौरा सिरे से पड़ा ही नहीं है. इसे तो सर्वाइकल स्पौंडलाइटस की तकलीफ है. यह अभी मरेगा नहीं—अभी इसकी चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं. अभी इसे कोई पुरस्कार नहीं मिलेगा. . ."

आलोचक ने मेरे कंधे पर इतनी जोर से हाथ मारा कि मेरा भी स्पौंडलाइटस का दर्द जाग उठा.

लेखक के दिल का दर्द मेरी समझ में आने लगा था. □

● 175, वैशाली, दिल्ली-110034

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• सूर्यबाला

सम्मेलनी समां

सम्मेलन का एक मूड होता है और एक समां होता है. . . पर कई बार ऐसा भी होता है कि समां तो बंध जाता है, पर बेचारे मूड की ऐसी-तैसी हो चुकी होती है. प्रस्तुत है ऐसे ही एक सम्मेलन में फंसी वक्ता की हालत का जायजा

मैं ठीक समय पर पहुंची थी. दरअसल यही सबसे भयंकर भूल की थी. पता नहीं यह एक छोटी-सी चीज मैं कब तक सीख पाऊंगी कि कहीं किसी भी सोसायटी में ठीक समय पर कभी नहीं पहुंचना. यह भी कोई बात हुई कि एकदम ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे की तरह जाकर एक कोने में समा जाओ; लोग आते जायें, तुम दुबकते जाओ. कुल मिलाकर गोष्ठी का तीन चौथाई समय, हर नये आनेवाले के साथ ही खिसकने और जगह बनाने में गुजर जाये.

हर्गिज नहीं! पहुंचिये तो ऐसे कि मंडली जुट चुकी हो, समां बंध चुका हो और बीच से हाथ जोड़ते हुए मृदु मुस्कान बिखेरते हुए क्षमा मांगते हुए आपको बड़े संकोच के साथ गुजरना पड़ रहा हो. आपके लिए जगह बनायी जायेगी. . .आइये-आइये कहकर पुकारा जायेगा. मन में कुढ़ते हुए ही सही, किसी के पूछने पर आपका नाम फुसफुसाया जायेगा. आप सबको जानें-पहचानें या नहीं, आपको तो सब जान गये और यही तो चाहिए. बड़ी आह्लादक स्थिति होती है यह, आजमा कर देखिए बंधु! मेरी तरह मूर्खता न कीजिए.

मेरा यह सपना तो आज तक सपना ही रह गया. कारण, सब जगह समय से पहुंची, या फिर नहीं पहुंची.

एक नहीं, हजार ऐसे अनुभव हुए हैं कि वहीं की वहीं सम्मेलन के अखाड़े की मिट्टी उठाकर कसम खायी है कि आज से कभी समय पर नहीं पहुंचना. लेकिन मेरी आदत है कि सुधरती नहीं. हालांकि इस आदत ने मुझे बड़ी-बड़ी शर्मिंदगी और हादसों का सामना करवाया है.

उस दिन एक सम्मेलन में पहुंची. हमेशा की तरह समय से. पते और चौहद्दी के हिसाब से जगह सही लगी. लेकिन ऊपर-नीचे, दायें-बायें कोई ऐसा दीखे ही नहीं जिससे यह पूछा जा सके कि 'भाई! यहां हिंदी नाम की एक भाषा का, सम्मेलन नाम का अखाड़ा होने जा रहा है, 'ओरियंट लिटरेरी सोसायटी' के हॉल में—क्या आप बता सकते हैं यह स्थान कहां है?'

जब बेकसी हद से गुजरने लगी तो एक दरबाननुमा फरिश्ता नमूदार हुआ और उसने 'एवमस्तु' की शैली में एक हॉल की तरफ इशारा कर दिया. उस हॉल के बरामदे में दूसरा दरबान था. जिसने खैनी की एक जबर-दस्त फंकी मारते हुए सामने के एक दरवाजे की ओर इशारा कर दिया.

अब तक पंद्रह मिनट हो गये थे. चारों तरफ सन्नाटा था. न बेकार की तू-तू, मैं-मैं, न चख-चख. लगा गलत जगह पर आ गयी हूं. इन मूर्ख दरबानों को क्या मालूम साहित्य सम्मेलन कैसे होते हैं? क्या रौनक होती है ऐसे अवसरों पर सिर फुड़ावल की. फिर लगा, स्थापित सम्मेलनों के इतिहास में आज एक नया कीर्तिमान स्थापित हुआ चाहता है. सुर्खियों में खबर आयेगी हिंदी का एक उच्च स्तरीय सम्मेलन बिना जूतम-पैजार के संपन्न . . . नहीं तो नजारा यह होता है कि 'वक्तान के आनन बिदुन पै श्रोतान ने जूतम पैजार करी.'

अवश्य ही अंदर कोई सशक्त विचात्तेजक वक्तव्य चल रहा है. लोग चिंतन के गोदाम की लोडिंग कर रहे होंगे. ऐसे में देर से पहुंचना छि: छि:. या फिर यह भी हो सकता है, अंदर के श्रोता भागने पर उतारू हों. दरवाजा मजबूती से बंद है. दरबान ने हौसला बढ़ाया, "खोल लीजिये, खोल लीजिए--कोई बात नहीं."

थोड़ा ढाढस बंधा. सहमते-सहमते दरवाजा खोला तो क्षण भर को अवाक रह गयी.

हाल में घुप अंधेरा. वैसे भी बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूरे हॉल में शांति थी. कोई हूटिंग-शूटिंग नहीं. . . हूटिंग होती कहां से? पूरा हॉल खाली था और सामने की सीट पर बिराजमान बारहों श्रोता एक दूसरे के कंधों पर सिर रखे सो रहे थे. . . वातावरण काफी पवित्र किस्म का हो गया."

की रोशनी के बाद अंदर जाओ तो आंखें जवाब दे जाती हैं. सो, दे गयीं. ठीक है, आंखें तो वैसे भी लड़ती-भिड़ती आती-जाती रहती हैं पर कानों को तो अपना काम करना चाहिए. लेकिन कुछ सुनाई भी नहीं पड़ रहा था. खुदाया! कहां आ गयी? आंख और कान दोनों ऐसे नाजुक मौके पर जवाब दे गये. हे प्रभो, यह कैसा कौतुक? अब माया जाल न फैलाओ हिंदी साहित्य का लेखन क्या इतना जोखम भरा है? ये क्या जगह है दोस्तो, ये कौन सा दयार है! ! . . .

घबड़ाकर लौटने ही वाली थी कि अंधेरे हॉल के बीचों-बीच से आवाज आयी. "आइये-आइये. . ."

बचपन में भुतहे पीपल के नीचे से गुजरने वाली. . .ऊपरी बवालो की कहानियां सुनी थीं. सो मैं डरकर और तेजी से भागने को हुई. लेकिन आवाज और तेज हुई. . .

"आइये, आइये, आप लौटी क्यों जा रही हैं. मैं इधर बैठा हूं . . ."

और हॉल के बीचों बीच से संयोजकजी प्रगट हुए. असली-नकली की पहचान हुई. वे संयोजकजी ही थे. प्रकृतिस्थ होकर मैंने कहा, "बाकी लोग कहां हैं?"

उन्होंने निहायत संजीदगी और ईमानदारी से कहा, "इस समय तीन बजे का समय है न! मेरा खयाल है सब लोग सो रहे होंगे . ."

मैंने चिंतित स्वर में कहा, "फिर सम्मेलन का क्या होगा?"

उन्होंने पूरे विश्वास के साथ कहा, "वह तो समय पर ही होगा:–आप आ गयी हैं. शुरू कर दीजिए. . ."

मैंने कहा, "लेकिन. . .लेकिन श्रोता?"

उन्होंने कहा, "श्रोताओं का क्या है. अभी जुटाए देता हूं." उन्होंने दबंग आवाज में दरबान को बुलाया और कहा कि वह जरा लपककर पुस्तकालय से पुस्तकाध्यक्ष, लिपिक और पुस्तकालय के चपरासी को बुला लायें.

दरबान ने अटककर पूछा "क्या कहूंगा?"

"कहना, फौरन आयें. श्रोता बनना है."

दरबान लपक गया. . .

पुस्तकालय बंद कर ताला-कुंजी लगाने में थोड़ा समय तो लगा ही. इतने में मेरे जैसे दो-तीन वक्ता और आ गये. इस प्रकार वक्ताओं का कोरम तो सत्तर प्रतिशत पूरा हो चुका था लेकिन श्रोता कुल संयोजकजी सहित चार ही थे, इतने में सम्मेलन के मंत्री, उपमंत्री, संचालक, महासचिव, उपमहासचिव और उपमहामंत्री आते दिखाई दिये. संयोजकजी प्रसन्न होकर बुदबुदाये, "जानता था सबको ऐसा ही एक-एक ओहदा दूंगा तो कैसे न आयेंगे सब."

इतने पर भी कुछ वक्ताओं ने आपत्ति की कि पहले श्रोता तो जुटने दीजिए. इस पर संयोजकजी को ताव आ गया और बोले, "आप चार वक्ता हैं और बारह श्रोता! फी वक्ता तीन श्रोता तो जुट गये. अब क्या महफिल जुटायेंगे? अरे, हमें चिंतन करना है, कव्वाली नहीं गानी. किसी साहित्य सम्मेलन में कोई माई का लाल इससे ज्यादा श्रोता जुटा दे तो मैं अपना नाम बदल दूं!"

नाम किसी को नहीं बदलवाना था.

बात भी ठीक थी. मान ली गयी. वक्ताओं के पर्चे अच्छे थे. वे पढ़ने लगे. थोड़ी देर में ही पूरे हॉल में शांति छा गयी. सुई गिरने तक की आवाज नहीं. कोई हूटिंग-शूटिंग नहीं. हूटिंग होती कहां से? पूरा हॉल खाली था और सामने की सीट पर विराजमान बारहों श्रोता एक दूसरे के कंधों पर सिर रखे सो रहे थे. अकेले संयोजकजी जाग रहे थे. जैसे पंचवटी में रखवाली करते हुए लक्ष्मण. वातावरण काफी पवित्र किस्म का हो गया. सिर्फ उसे बीच-बीच में संयोजकजी की जम्हाई अथवा इक्के-दुक्के श्रोताओं के खर्राटे ही भंग कर रहे थे. जो कानों को सुखद लग रहा था. साहित्य के जागरूक पहरुओं का इस प्रकार निश्चिंत होकर सोना बड़ा भला लग रहा था.

मैंने सलाह दी कि श्रोताओं को चाय पिलवा दीजिए—ताली बजाने के लिए जग जायेंगे और टिके रहेंगे. इसलिए श्रोताओं के लिए चाय मंगवायी गयी. वक्ताओं के लिए एक-एक ग्लास पानी. पान, बीड़ी, सिगरेट वगैरह भी मुहैया किये गये. मुझे बड़ी कोफ्त हुई कि मैंने समय रहते सिगरेट पीना क्यों नहीं शुरू किया.

इतने में शोर हुआ कि 'अध्यक्षजी आ गये.' 'अध्यक्षजी आ गये' और बारहों श्रोताओं ने ताली बजाकर उनका स्वागत किया. अध्यक्षजी ने हाथ जोड़कर उनका शुक्रिया अदा किया और संयोजकजी से कान खोदने के लिए लकड़ी मांगी. हाल में सक्रियता बढ़ी.

महामंत्रीजी बाथरूम गये और उपसचिव ने रजिस्टर लिया. मौका पाकर श्रोताओं के बीच बैठे पुस्तकाध्यक्ष ने चपरासी को घर के लिए सब्जी लाने भेज दिया. इन उत्साहवर्धक क्रियाओं के बीच संचालकजी बीच-बीच में मंच से बोलते रहे जिसका आशय था कि हम सब चिंतित थे कि एक महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहे हैं, दूसरा एहसास हम सबको एक साथ हो रहा है.

जगकर चाय पिये हुए श्रोताओं ने इस पर ताली बजायी और हाल से बाहर जाते-जाते एक दूसरे से कहा, "सम्मेलन सचमुच सफल रहा. . .खूब सोये. . .वरना अपने घर में बाहर-भीतर की चिल्लाहटों में चैन से सोना कहां हो पाता है!" □

● द्वारा श्री आर. के. लाल, ग्लैक्सो लेबोरेटरीज, 9 पोखरन रोड, थाना, महाराष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

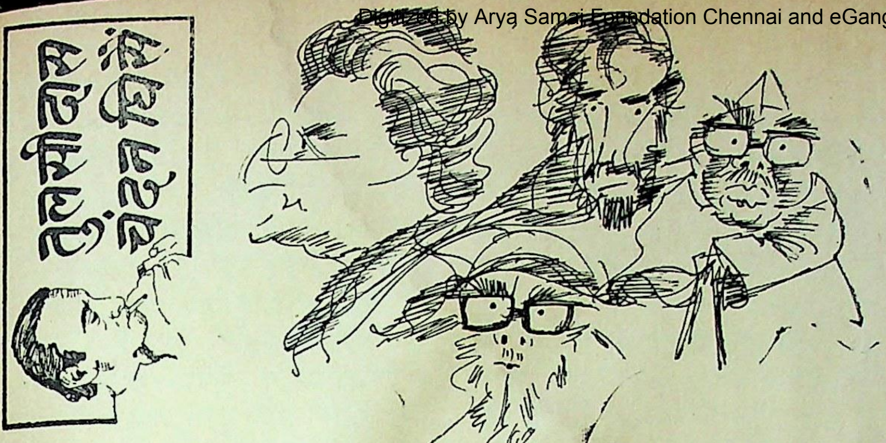

हमारे राजनेता बाहरी सांस्कृतिक हमलों से रात-दिन घबरा रहे हैं, दुहाई दे रहे हैं, संस्कृति की रक्षा में दुबला रहे हैं . . . मगर ये हमले क्या हो भी रहे हैं और हो रहे हैं तो किस ओर से . . ! —पड़ताल कर रहे हैं परसाईजी

संस्कृति की रक्षा बनाम रक्षा की संस्कृति

▣ **हरिशंकर परसाई**

मनीषियों से संस्कृति के बारे में आलोक ग्रहण करने में असफल तुलसीदास के कानों में फिर प्रधानमंत्री की चेतावनी गूंजती है कि हमें अपनी संस्कृति की रक्षा करना चाहिये. हमारे ऊपर बाहर से सांस्कृतिक हमले हो रहे हैं. इस हमले से लड़ने के लिए, मैं सोचता हूं, सांस्कृतिक रूप से स्वस्थ आदमी होने चाहिये. साथ ही सांस्कृतिक बमवर्षक, सांस्कृतिक मिसाइलें, सांस्कृतिक तोपें और टैंक होना चाहिए, सांस्कृतिक गोला-बारूद होना चाहिए. हमें सांस्कृतिक युद्ध सामग्री की कैसी सप्लाई हमारे उपदेशक राजनेता कर रहे हैं, जरा यह देख लें.

कर्नाटक में एक बिकाऊ विधायक की पतिव्रता रिपोर्ट करती है कि मेरे पति का अपहरण कर लिया गया है. कुछ दिन बाद फिर बयान देती है कि वह रिपोर्ट झूठी थी. मुझे डराकर वह रिपोर्ट करायी गई थी. अब फिर बयान बदल सकती है कि पिछला बयान दबाव में दिलवाया गया था. मेरा पति वास्तव में शुरू से ही गायब है. उधर दूसरे विधायक की खरीद-फरोख्त का 'टेप' अंतरराष्ट्रीय प्रचार पा गया है. मुख्यमंत्री बार-बार चेतावनी देते हैं कि हमारे समर्थक विधायकों को खरीदने की कोशिश की गई, तो बहुत खराब नतीजा होगा. माल को चेतावनी नहीं दे रहे हैं, खरीददार को चेतावनी दे रहे हैं. यानी हमारे समर्थक तो बिकने को तैयार बैठे हैं. मगर किसी ने उन्हें खरीदा तो ठीक नहीं होगा.

दक्षिण से उत्तर आइये. हरयाणा में पहले बंसीलाल-धमकी, हाथ-पांव तोड़ क्रिया, ब्लेकमेल, लोभ, खरीदी से विधायकों को बकरियों की तरह अपने बाड़े में रखते थे. ये बातें पचीसों बार अखबारों में छप चुकी हैं. ये बकरियां मिमियाने वाली नहीं होतीं. हर बकरी एक भालू है. बंसीलाल के उस्ताद निकले भजनलाल. उन्होंने बकरियों का पूरा झुंड थोक खरीदा और सबको लेकर जनता पार्टी में चले गये और मुख्यमंत्री बन गये. अखबारों में छपा था कि एक विधायक की कीमत पांच लाख दी गयी. फिर जनता पार्टी का तारा ढाई साल में दिल्ली में अस्त हुआ तो भजनलाल पूरे विधायक-झुंड, दफ्तर कुर्सी-टेबिल, फाइलें लेकर कांग्रेस में लौट आये. अखबारों में छपा था कि रेट तीन लाख तक गिर गया था. पहले मार्केट 'टाइट' था तो पांच लाख. अब बाजार में माल ही माल है, तो सिर्फ तीन लाख. तब फोटो छपा था. भजनलाल आदि मुस्कुराते हुए कतार में खड़े हैं. इंदिराजी मुस्कुराते हुए हाथ जोड़े हैं. कहती हैं-अरे, आप लोग तो अपने ही जाने-पहचाने लोग हैं.

तुलसी कहता है-अगर यह अपनी राजनैतिक संस्कृति ब्रिटेन को प्रभावित कर दे, तो उनका 6–7 सौ सालों का संसदीय लोकतंत्र खत्म! जो चेतावनी इंदिराजी दे रही हैं, वह मार्गरेट थैचर को अपने देशवासियों को देनी चाहिये—भारत से आ रही संस्कृति से अपनी रक्षा करो! यह अपने लोकतंत्र के लिए खतरा है.

हर राज्य में विधायक बिकाऊ हो गया है. जो गुट उसे 2–4 लाख दे दे, मंत्री या उपमंत्री बना दे, पैसा खाने की छूट मिल जाये, वहां चला जायेगा. सिद्धांत, कार्यक्रम, ईमान कहां.

भारत में राजनैतिक 'विपक्ष' नाम की कोई चीज नहीं है. 'विकल्प' नाम की कोई चीज नहीं है. यहां दो वामपंथी और एक दक्षिणपंथी संगठित पार्टियां हैं. इनके सिवा व्यक्ति हैं, जिनके नाम से या जिनके आसपास कुछ लोग हैं. इसे ये 'पार्टी' कहते हैं. इनकी पार्टी नहीं भीड़ है. इन्हें नकारात्मक वोट मिलते हैं. ये वोट आशा के नहीं, निराशा के हैं. नीम खाते-खाते ऊब गये तो कड़वा चिरायता खा लिया. ये 1977 से 1980 तक शासन करके एक दूसरे को पूरी तरह नंगा कर चुके हैं. अभी भी ये आपस में कहते हैं— तू झूठ बोलता है. नहीं, तू झूठ बोलता है. अब इसी पर बहस चल रही है कि यह तय हुआ था कि नहीं कि मोरारजी भाई और जगजीवनराम ढाई-ढाई साल प्रधानमंत्री रहेंगे. जो बता सकते थे, वे दोनों मर चुके—जयप्रकाश और कृपलानी. इसलिए अंधेरे में एक गुट दूसरे गुट को धुनक रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• व्यंग्यचित्र : बदर

सिद्धांत, नैतिकता, मूल्य, ईमान सब इस राजनीति से गायब हो चुके. राजनैतिक संस्कृति सड़ चुकी. किसी छोटे से बड़े नेता तक को आज ईमानदार और सिद्धांतवादी कहने में खतरा है. सुननेवाला गुस्से से चांटा मार देगा.

यह आकस्मिक नहीं है. यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की तार्किक परिणति है. 1947 में जो व्यवस्था स्वीकार की थी, उसमें ये खतरे निहित थे. ऐसा होना ही था. सो हो रहा है. प्रधानमंत्री सांस्कृतिक क्षेत्र में घुसपैठ से तो चिंतित हैं, मगर उन्हें खास चिंता होनी चाहिये, बाहरी राजनैतिक घुसपैठ से, जो देश की अस्मिता को मिटा देगी.

सामाजिक और आर्थिक न्याय की ऐसी पक्की व्यवस्था के बिना, जो बद्धमूल जीवन-पद्धति बन जाये, पूंजीवादी लोकतंत्र और विकास मार्ग को अपनाने का नतीजा यह होगा कि सारे मूल्यों का विघटन और नाश हो जायेगा, और सिर्फ एक जीवन मूल्य हर क्षेत्र में रह जायेगा—धन प्राप्ति. इस समय एक ही जीवन मूल्य रह गया है—सही या गलत तरीके से बिना मेहनत के छल, कपट, भ्रष्टाचार से पैसा इकट्ठा करो. एक ही संस्कृति है—बेईमानी से पैसा इकट्ठा करना. किसी भी समाज में अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग जीवन-मूल्य नहीं होते. संपूर्ण जीवन-मूल्य (टोटल वेल्यूज) होते हैं. ऐसा नहीं हो सकता कि बाजार में कालाबाजारी हो और इनकमटैक्स विभाग में कोई भी घूस न लेता हो. राजनैतिक भ्रष्टाचार से राजनीति पुरुष और देवियां ऐश कर रहे हैं और संपत्ति बना रहे हैं, तो बाजार में मुनाफाखोरी है, कचहरी में मजिस्ट्रेट के सामने बैठा रीडर नोट ले रहा है, जंगल अफसर ठेकेदार से पैसे लेकर लकड़ी कटवा रहा है, अस्पताल में डाक्टर को घर जाकर पैसे न दो तो मरीज नहीं भरती किया जायेगा, भरती हो भी गया तो बिना पैसा दिये डाक्टर उसकी तरफ नहीं देखेगा, योजनाओं का लोहा-सीमेंट कालाबाजार में बिकता है, अकाल-राहत काम वाले भूखों का अनाज ही नहीं, मवेशियों का घास तक खा जाते हैं, लोककर्म विभाग, सिंचाई विभाग का मामूली इंजीनियर पचास हजार रुपये जेब में रखकर घूमता है. पांच साल की नौकरी में उसका बंगला बनता है, सरकारी इमारत दो साल में टूटने लगती है क्योंकि अफसर और ठेकेदार मिलकर सीमेंट खा गये. पुलिस, आबकारी की कमाई का हिसाब नहीं, ट्रस्टों के भ्रष्टाचार का कीर्तिमान गांधी शांति प्रतिष्ठान ने बना दिया. गांधीजी का चश्मा ही गायब है, जनसेवक का काम पैसा खाकर लोगों के काम सरकार से कराना है, चार-चार पृष्ठों से जब तक अखबार निकालने वाले पत्रकारों ने 'ब्लैकमेल' करके लाखों कमा लिये हैं, बड़ों की बात और बड़ी होगी. बेकार गरीब फटेहाल का नाम सौ रुपये दिये बिना रोजगार कार्यालय में दर्ज नहीं होता, दहेज का मुफ्त पैसा पाने के लिए बहू जला दी जाती है, मंदिर, मठ, भ्रष्टाचार के अड्डे हैं, अध्यापक पढ़ाते नहीं हैं, विश्वविद्यालयों में पैसे लेकर झूठी डाक्टरेट दिलवाते हैं.

सवाल है—यह सब होते हुए वह कौन-सी संस्कृति है, जिसे हम अपनाये हुए हैं और जिसकी रक्षा करना चाहते हैं. पश्चिम इस तरह का कौन-सा हमला कर रहा है, जिससे हमारी संस्कृति को खतरा है? हजारों वर्ष प्राचीन जिस भारतीय संस्कृति की हम जय बोलते हैं, उसका प्रतिफलन क्या यही शुभ है, जो मैंने ऊपर बताया है? हम खुद तो उस महान् संस्कृति का नाश कर रहे हैं और चिल्ला रहे हैं कि विदेशी नाश कर रहे हैं.

रूढ़ियां संस्कृति नहीं हैं. सारी परंपराएं पालते जाना भी संस्कृति नहीं है. परंपराएं छूटती जाती हैं और नयी परंपराएं ग्रहण की जाती हैं. कभी यौन-शुचिता संस्कृति का इतना बड़ा तत्व माना जाता था कि पति की चिता पर पत्नी को डालकर जला देते थे. आगे यह हुआ कि जबरदस्ती विधवा को भांग-धतूरा पिलाकर पति की चिता में जला देते थे, क्योंकि उसकी जायदाद पर कब्जा करना था. बहुत से सुशिक्षित हिंदुओं का भी यह विश्वास है कि 'पतिव्रता' सिर्फ हिंदू स्त्री होती है. पश्चिम की स्त्री, बदचलन होती है. यह मूर्खतापूर्ण अहंकार और अज्ञान है. पश्चिम में भी हमारी तरह पति-पत्नी संबंध होते हैं. और संश्लिष्ट परिवार होते हैं. कुछ लोग तो धोती पहनने को ही भारतीय संस्कृति मानते हैं. मगर संस्कृति की इस फर्राती धोती को पहिनकर कोई कारखाने में मशीन चलाये, तो वह मशीन में फंस जायेगी और मैकेनिक की धोती-संस्कृति से बोटी-बोटी कट जायेगी. कारखाने में जनेऊ पहनकर भी पेंट पहनना चाहिये. सूट और टाई भी संस्कृति नहीं है. भारत की जलवायु में कुल ठंड के तीन महीने 'थ्रीपीस सूट' पहिन सकते हैं. बाकी नौ गर्म महिनों में यह बड़ी अड़चन की पोशाक है. मगर लगातार सूट और टाई पहने जाते हैं. उपनिवेशवाद के कारण यह अंतरराष्ट्रीय पोशाक हो गई है. भारतीयों पर गोरी जाति ने राज किया और भारतीय गोरी जाति को आदर्श मानकर उसकी नकल करने लगे. रहन-सहन, लिबास, कमोड और छुरी-कांटे की नकल. इसके साथ ही गलत अंगरेजी, बर्थ डे केक, हेपी डिवाली टू यू!' यह उपनिवेशवाद की हीनता की भावना है. यही हीनता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरी जाति की यही पूजा, सुंदर भारतीय लड़कियों को छोड़कर, कुरूप और गंदी 'पीस कोर' की अमरीकी गोरी लड़की से भारतीय बुद्धिजीवी की शादी कराती है. बाद में वह अमरीका जाकर छोड़-छुट्टी कर लेती है. मगर यह भारतीय बुद्धिजीवी बाकी भारतीयों पर तुच्छ नजर डालकर कहता है- 'यू बैकवर्ड इंडियंस'. इंडियन लड़की से ही शादी करोगे. देखो, मैंने महान गोरी जाति की लड़की पटाई है. यह बात हीनता की भावना की है. जो नस्ल से ही अपने को हीन माने, उसके लिए संस्कृति का कोई मतलब नहीं.

और चिंता यह है कि ऊषा उथुप हावभाव से 'पॉप' संगीत गाती है. 'पॉप' यानी पापुलर, लोकप्रिय, इंग्लैंड में मोजार्ट, बाख, वेगनर से ऊबे और विक्टोरियन नैतिकता से त्रस्त युवक-युवतियों ने 'पॉप' गाना शुरू किया था. भारत में भी तो साधारण श्रेणी के श्रोता दो-दो घंटे के कर्कश स्वर के राग से ऊबे हैं. . . यह संगीत लोक तक नहीं पहुंचता. लोक इसे समझता भी नहीं है. इसलिए फिल्मी गाने चौबीस घंटे बजते हैं. इसके साथ ही 'डिस्को' आ गया. अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक से अमरीकी डालर लेते जायेंगे, तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के 'डिस्को' खरीदना ही पड़ेगा.

संस्कृति न रूढ़ि है न गलत-सही परंपरा. नृत्य, संगीत, नाट्य, गान संस्कृति नहीं, संस्कृति के उपादान हैं. ये मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण करते हैं, उसकी आत्मा को ऊंचा उठाते हैं, उसकी संवेदना को जगाते हैं और विस्तार देते हैं, उसे विराट मानवता से जोड़ते हैं, और उसे बेहतर मनुष्य बनाते हैं.

संस्कृति जीवन मूल्यों का समुच्चय है. ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में मनुष्य जाति इन कल्याणकारी मंगलमय जीवन मूल्यों को खोजती है, अंगीकार करती है और जीवन में प्रतिफलित करती है. ये जीवन मूल्य आभिजात्य वर्ग के द्वारा खोजे और अंगीकार किये जाते हैं, यह बात नहीं है. सामान्य लोक जीवन में ये मूल्य खोजे जाते हैं और लोक-संस्कृति तमाम उच्च वर्गीय झंझटों और विकृतियों के बावजूद प्रवाहमान रहती है. गांव की अपढ़ स्त्री मिट्टी की दीवार पर गेरू से आकृतियां बनाती है. उससे पूछो तो वह कहेगी—इससे सबका मंगल होता है. यह भावना उस अपढ़ वृद्धा ने किसी शास्त्र से या संस्कृति के मनीषी से नहीं सीखी थी. दीर्घकालीन लोक संस्कृति से अपने आप यह भावना आई थी.

यह जो भारतीयता और भारतीय संस्कृति की रक्षा का इतना हल्ला है इसका परिणाम एक तो यह निकला है कि देश के चारों कोने में पुनरुत्थान-वाद का घनघोर प्रचार हो रहा है. यह सुनियोजित ढंग से चल रहा है. संगठन है, जो बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से नियोजित ढंग से पुनरुत्थानवाद ला रहे हैं और इसी को संस्कृति कहते हैं. पुनरुत्थानवाद आधुनिकता का शत्रु है. वह तर्क, विवेक, वैज्ञानिकता का शत्रु है. वह अंध-विश्वास और भाग्य-वाद लाता है. इसकी जकड़ में सबसे अधिक वे लोग हैं, जिनसे आधुनिकता लाने की हमने आशा की थी—यानी सुविधासंपन्न मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी. घनघोर कर्मकांड हो रहे हैं. जगह-जगह यज्ञ होते हैं. जहां देखो वहां साधु, तांत्रिक, स्वामी, ब्रह्मचारी, सदाचारी, योगी बैठे हैं. अपढ़ गंवार कुटिल स्वामी और योगी बड़े-बड़े राजनेताओं को भक्त बनाये हैं, मंत्रीगण इनकी पूजा करते हैं, इनसे यज्ञ कराते हैं. ये छली, फरेबी, विद्याहीन साधु सचिवालयों पर कब्जा किये हैं. कारण है-नेतावर्ग आत्मविश्वास खो चुका और जनता के प्रति अपराध-बोध से पीड़ित है.

बहुत खतरा देश को इस बढ़ते पुनरुत्थानवाद की आंधी से है. इसके साथ खास रंग की राजनीति भी जुड़ी है. यही हमारा सांस्कृतिक संकट है.

ऐसा ही सांस्कृतिक संकट अमानवी-करण की तेज गति है. सामाजिक, आर्थिक न्याय के अभाव में एक 'स्टेज' पर निर्वासन और अमानवीकरण आता ही है. पश्चिम का प्रभाव न आता, तो भी कुछ हद तक देशी 'अमानवीकरण' होता ही. पूंजीवादी पश्चिम से एक 'रेडीमेड' अमानवीकरण का नमूना हमें मिल गया. अमानवीकरण यानी मानवी संबंधों को नकारना और पशु स्तर पर जीना. हमारे नवधनिक वर्ग ने जहां पश्चिमी जीवन पद्धति अपना ली है, वहीं स्वाभाविक परंपरागत मानवी संबंधों को भी त्याग दिया है. इस वर्ग की जीवन के प्रति पशु जैसी दृष्टि हो जाती है. चीता अपने लिए जीता है. मादा से 'सेक्स' संबंध केवल शरीर स्तर पर–संभोग के बाद मादा से कोई संबंध नहीं. अपने लिए जानवर मारता है और अकेला उसे खाकर सो जाता है. चीते की कोई संस्कृति नहीं होती.

अमानवीकरण में इस नवधनिक वर्ग का हाल चीते जैसा हो गया है. अपने लिए पैसा कमाना और उसका सिर्फ आप ही भोग करना. सामाजिक दायित्व कुछ नहीं. न दूसरे मनुष्य के प्रति कोई भावना. परिवार में भी संबंध टूट जाते हैं. पत्नी से कोई भावात्मक लगाव नहीं क्योंकि 'सेक्स' वह खरीद लेता है. बच्चों के प्रति प्रेम नहीं. यही रुख बीवी और बच्चों का. जो चीज अपने काम की नहीं, बेकार. अमरीका में मां-बाप 'जंक' (पुराना रद्दी माल) हो गये हैं. ऐसा माल कबाड़ी को बेचा जाता है. पर कबाड़ी बूढ़े-बूढ़ी को खरीदता नहीं है, तो वे बूढ़ों के अनाथा-लयों में रहते हैं.

बाकी चिंता की क्या बात? संस्कृति में अग्रणी बंगाल में ये एक साथ चल रहे हैं–संतोषी मां, डिस्को, पॉप संगीत, परमहंस, कैबरे, रवींद्रनाथ, काल गर्ल, विवेकानंद और कार्ल मार्क्स भी. □

—चलते-चलते—

"तुम्हारी 'रोटी' पर लिखी कविता काफी चर्चित हो रही है. आखिर रोटी पर कविता लिखने की प्रेरणा तुम्हें कैसे मिली?" एक पत्रकार ने कवि मित्र से पूछा.

"जब से अपनी नयी पत्नी को रोटी बनाकर खिलाना शुरू किया."

—नवीन नयन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

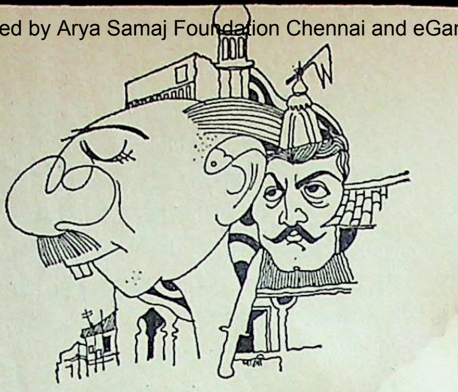

जबेरी बाड़ा गुजरात : इंसाफ बादशाह का बदरंग होली पर

▣ बाला दुबे

होली सन् 1714 की—बदशकुन, बदकिस्मत, बदरंग.

गुजरात के पारखी जौहरियों का खुशहाल मोहल्ला जबेरी बाड़ा. साफ सुथरी चौड़ी-सी गली, नक्काशी से भरे पत्थरों के मेहराब, खुशनुमा गोखें और ऊंची अटारियां. उत्तर भारत से जब गुजरात के गाजीउद्दीन खां फिरोज वापस अपने देश आये थे तो अपने साथ लाये थे मदनगोपाल जौहरी को. मदनगोपाल की नजर चील जैसी थी. हथेली पर रखे पत्थर की जन्मपत्री ऐसे पढ़ते जैसे कोई कर्ण-पिशाचिनी-सिद्ध तांत्रिक भूत-काल बतलाता चला जाता है. जब एक बार जयपुर का एक भेजा हुआ जौहरी मिश्री की डली को इस सफाई से तराश कर लाया था और उसने उसे हीरा करार दिया था तो गाजी-उद्दीन खां फिरोज के जौहरी भी चकरा गये थे. और तब उन्होंने मदन-गोपाल को बुलवाया था. टाटरी से पॉलिश की हुई मिश्री की डली बाका-यदा दमक मार रही थी. मदनगोपाल ने फिर अपनी चील जैसी नजर उस पर गढ़ायी. उसने हथेली गीली करके उस नगीने को जांचा था और जब दो मिनट बाद उस पर एक मक्खी ने बैठकर अगली टांगों से नगाड़ा बजाया तब मदनगोपाल मुस्कराया. उसने भरे दरबार में वह नगीना मुंह में डाल लिया. गाजीउद्दीन खां डर से कांप गया.

"क्या कर रहे हो मदन गोपाल," वह भय से बोला, "हीरा निगलने का मतलब जानते हो?"

तब तक मदनगोपाल उस मिश्री की डली को आधा चूस चुके थे. जयपुर का जौहरी उनके पांवों में गिर पड़ा था और जान की पनाह भी उसे मदनगोपाल ने ही दिलवाई थी. गाजीउद्दीन खां फिरोज ने उस दिन से ही मदनगोपाल का लोहा माना था. और जब वह गुजरात वापस आया तो मदनगोपाल को अपने साथ ले आया.

जबेरी बाड़े में मदनगोपाल ने तिमंजिली हवेली बनवायी थी. उनकी देखादेखी फिर और भी सर्राफ जौहरी उस गली में बसने लगे—कपूरचंद मंसली, विश्वनाथ पारिख, हरीराम, और लाला भाई जवेरी. सबकी भरी पूरी हवेलियां थीं, भरे पूरे परिवार थे, जमा हुआ कारोबार था. पानी-दार पत्थरों से ही वह जूझा करते और लाखों के सौदे निपटाते. तीज-त्यौहार पर गली में रंग बरसता.

होली पर तो बड़ा लंबा जश्न मनता. दस दिन पहले से रात को संगीत की महफिलें जमतीं. ढोलक, मंजीरे, बाजे–गाजे गई रात तक बजते रहते. राग काफी की अद्भुत बंदिशों में होली गाने वाले दूर-दूर से आते और सुननेवालों को मुग्ध कर डालते. जिस दिन होली जलती उस दिन खूब शोर-शराबा होता और फाग वाले दिन तो सुबह से ही सिल-लोढ़ियां चालू हो जातीं. सब सर्राफों ने होली बांट ली थी. एक साल मदनगोपाल के यहां होली मनती तो दूसरी साल कपूर चंद मंसली के. उस वर्ष मदनगोपाल सर्राफ के एजेंट हरीराम के यहां होली मनायी जानी थी. सब सर्राफ आकर रंग-बिरंगे हो चुके थे और तभी न जाने कहां से एक मुसलमान भाई उधर से गुजरा. वैसे वे लोग होली पर यह खयाल रखते थे कि किसी मुसलमान भाई पर भूले से भी रंग नहीं डाला जाये. पर न जाने कैसे गफलत हो गयी जो उस भाई पर रंग की बौछार आ पड़ी. और वह लाल-तत्ता होकर सीधा पहुंचा शाह मुहम्मद अली वाइज के घर. देखते ही देखते अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी और उत्तेजित भीड़ जामा मस्जिद के पास मुल्ला अब्दुल हफीज के पास आ पहुंची. मुल्ला साहब सुन्नी बोहरों के धर्मगुरु और नेता थे. उनके शामिल होते ही भीड़ और भी बढ़ने लगी.

उन दिनों गुजरात के सूबेदार दाऊद खां पन्नी थे. कुछ लोगों ने सूबेदार के अफगान सिपाहियों को ऐसा भड़काया कि वे भी भीड़ में आ मिले. अब मामला संगीन हो गया. यह विशाल भीड़ शहर के काजी खैरुल्लाह खां के मकान की तरफ बढ़ने लगी. कुछ मुखबिरों ने भागकर काजी साहब को सारा मामला समझा दिया. माना कि जबेरी बाड़े के कुछ शाही जौहरियों ने गलती से किसी मुसलमान पर रंग डाल दिया था और वे उसकी माफी भी मांग चुके थे. यहां तक कि उन्होंने उस भाई को नयी पोशाक भी नज्र करना कबूल कर लिया था पर लोग बाग इस मामले को दंगे का जामा पहनाने के मूड में हो चुके थे. काजी खैरुल्लाह खां यह भी जानते थे कि गुजरात के सूबेदार दाऊद खां पन्नी हिंदुओं की हिमायत भी करते थे. यह सब जान-बूझकर काजी साहब ने इस में अपनी टांग अड़ाना ठीक नहीं समझा और वे अपने घर के अंदर चुपचाप बैठ गये. उत्तेजित भीड़ ने

गलियां : जहां इतिहास कैद है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उनका यह रवैया देखा तो और भी भड़क उठी और उन्होंने काजी साहब के घर पर धावा बोल दिया. काजी साहब को पकड़कर बाहर घसीटकर लाये और उन्हें जबरन भीड़ के आगे ठेलते हुए हिंदू मुहल्ले की तरफ बढ़ने लगे. उनका इरादा साफ-था—हिंदुओं के मकानों और दुकानों की होली जलाना.

जबेरी बाड़े के जौहरियों ने जब यह तूफान देखा तो कपूर चंद मंसली ने फौरन ही अपने हथियार बंद नौकरों को छत पर चढ़ा दिया. कपूर चंद मंसली सूबेदार दाऊद खां पन्नी का परम मित्र था और उसकी बात की साख भी थी. जैसे ही उत्तेजित भीड़ जबेरी बाड़े में घुसी कि कपूर चंद मंसली के नौकरों ने 'मरो मारो' दागना शुरू कर दिया. भीड़ ने लाख गाजियों के इरादे संवारे पर बारूद से उड़ते हुए छर्रों ने उन्हें ऐसा तितर-बितर किया कि देखते ही देखते भगदड़ मच गयी. अब भीड़ और भी खिसयानी बिल्ली बन गयी और अपनी धूर-दच्छिना करवा कर गालियां बकती वापस लौटने लगी. कई आदमी घायल भी हो गये थे और कई पीटे भी गये थे. पिट पिटाकर अब उन्हें कानून की गोद की याद आयी. भला देखो तो गुजरात का सूबेदार मुसलमान, राज्य मुसलमानों का, दिल्ली की गद्दी पर बादशाह फर्रुखसियर— वो भी मुसलमान और इन हिंदू जौहरियों की यह मजाल कि उन्हें उनके घरों में आग नहीं लगाने दी? अजी आग तो छोड़ो, उलटे लेने के देने पड़ गये. खदेड़ी हुई खिसियाई भीड़ ने फौरन ही सलाह मशविरा किया कि शाह मुहम्मद अली वाइज और सुन्नी बोहराओं के नेता मुल्ला अब्दुल हफीज को फौरन दिल्ली जाकर इन काफिरों की हरकत की शिकायत मुगल बादशाह फर्रुखसियर से करने जाना चाहिये. तभी गुजरात के सूबेदार दाऊद खां पन्नी ने भी सरकारी जांच पड़ताल शुरू कर दी. और पता लगा लिया कि हिंदुओं की इसमें कोई ज्यादती नहीं है. सूबेदार दाऊद खां ने सरकारी रिपोर्ट लिखकर तैयार कर डाली और सब कागजात कपूर चंद मंसली को देते हुए उसे दिल्ली दरबार रवाना कर दिया. इन्हीं कागजात पर काजी खैरुल्लाह खां, फौज के कमांडर और अन्य सरकारी अफसरों ने बाकायदा दस्तखत किये और लिखा कि हिंदुओं की इस वाकये में कोई गलती नहीं है.

. . . फसादियों का खयाल था जब गुजरात का सूबेदार मुसलमान, राज्य मुसलमानों का, दिल्ली की गद्दी पर बादशाह फर्रुखसियर फिर भला होली के रंगों में रंगे हिंदुओं के मुंह पर कालिख मलना कौन मुश्किल काम है. . .

दोनों दल मुगल दरबार चल पड़े. मुसलमानों के दल के शाह मुहम्मद अली वाइज और सुन्नी बोहराओं के नेता अब्दुल हफीज और गुजरात के मुसलमान शासकों-प्रशासकों के दल के नुमाइंदे कपूर चंद मंसली—हिमायत में हिंदुओं की. फर्रुखसियर उन दिनों सैयद बंधु के शिकंजे में फंसा था. वह इस जुगाड़ में रहता था कि किसी तरह से सैयद बंधुओं का जुआ उसकी गर्दन से उतरे. बेमौके के मजहबी झगड़े की बात सुनकर वह और भी बौखला गया. जब उसने गुजरात सरकार के मुसलमान अफसरों की रिपोर्ट देखी तो उसने उसी पर विश्वास किया. 'सियार उल मुख्तरीन' के मुताबिक उसने फौरन ही शाह मुहम्मद अली वाइज और उनके साथियों को पकड़कर हवालात में बंद करवा दिया. प्रतापी वजीर सैयद अब्दुल्ला के दाहिने हाथ उन दिनों थे लाला रतन चंद. लाला रतन चंद की तूती पूरी दिल्ली में बोल रही थी. देखा जाय तो लाला रतन चंद के भरने पर ही सैयद अब्दुल्ला ने बादशाह फर्रुखसियर से कहा था कि सरकारी रिपोर्ट पर ही ध्यान दिया जाय और तास्सुब की आड़ में अन्याय नहीं किया जाये. नतीजा यह हुआ कि शाह मुहम्मद अली वाइज और मुल्ला अब्दुल हफीज सात लाख की हवेली में पधरा दिये गये और उन्हें बंद कर दिया गया. पर लाला रतन चंद प्रशासन की शतरंज में भी माहिर थे. जिससे कि दिल्ली में आग नहीं भड़के उन्होंने दो तीन दिन के लिये कपूर चंद मंसली को भी बंद करवा दिया. इसका जिक्र 'मिराते अहमदी' है.

अरें. . . गुलाल है या मिर्चें

• व्यंग्यचित्र : बब्बर

फिर बादशाह फर्रुखसियर ने दोनों तरफ के लोगों को इस शर्त पर छोड़ा कि आइंदा कभी मजहबी फिसाद करने की कोशिश नहीं की जायेगी.

शाह मुहम्मद अली वाइज की जुबान में चाशनी के अलावा जादू भी था. इसके अलावा जब उन्हें अहसास हुआ कि वे गुजरात से चले तो हरि भजन को थे पर दिल्ली आकर कपास ओटने लगे तब उन्हें झेंप भी महसूस हुई. वैसे ये हयादार आदमी थे. वे फिर वापस गुजरात गये ही नहीं. दिल्ली में ही जम गये. उनके भाषण सुनकर दिल्ली वाले धड़ाधड़ उनके मुरीद बनने लगे, यहां तक कि जिस बादशाह फर्रुखसियर ने उन्हें बंद करके उनका स्वागत किया था, वह भी उनका बाद में मुरीद बन गया.

गुजरात के जबेरीबाड़े की उस बदरंग होली का दूध का दूध और पानी का पानी मुसलमान शासकों ने न्याय की छाया में ही किया था. बादशाह फर्रुखसियर ने भी न्याय की तराजू में मजहब के बांट नहीं रखे और जो जायज बात थी उसी बात को उठाया और बढ़ाया भी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

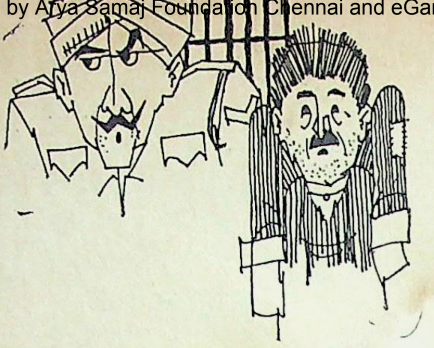

मुलाकात

■ रामलाल नाभवी

वे मंत्री हैं. जाहिर है व्यस्त भी होंगे. . . क्या आप इनकी व्यस्तता से परिचित है? नहीं, तो लीजिए प्रस्तुत है एक मंत्री की दिनचर्या का कच्चा चिट्ठा

"मंगल."

"जी."

"सुनो आज हम बहुत व्यस्त हैं, किसी से मुलाकात नहीं करेंगे. परसनल एसिस्टेंट एवं प्राइवेट सैकरेटरी को सूचित कर दो."

"परंतु हुजूर, आप से मुलाकात के लिए तो बहुत लोग दूर-दूर से आते हैं. क्या आज उन्हें भी रोक दूं?"

"केवल एक-आध को यदि वह दूर से आया हो, मिलने की आज्ञा है."

"बहुत अच्छा हुजूर."

"हमें मंत्री महोदय से मिलना है."

"आज उनसे मुलाकात नहीं हो सकती. वह बहुत व्यस्त हैं."

"परंतु उन्होंने आज मुलाकात की तारीख दी है. यह उनका पत्र है. हम बहुत दूर से आये हैं और बात केवल पांच मिनट की है."

"यह आदेश मंत्रीजी का ही है कि वह आज किसी से नहीं मिलेंगे."

"हम तुम्हें मुलाकात के बाद इनाम देंगे."

"मैं कोशिश करता हूं, उम्मीद कम है."

"सैकरेटरी साहिब, बाहर दो सेठ मंत्रीजी से बात करने आये हैं. यह पत्र दिया है. कहते हैं उन्हें आज बुलाया गया है."

"हुजूर, दो सेठ दूर से आये हैं, उन्हें आज मुलाकात का आपका आदेश है, कहते हैं केवल पांच मिनट ही लेंगे."

"अच्छा भेज दो."

"आप दायें हाथ के दरवाजे से बड़े कमरे में चले जायें, कोशिश करना कि बात दो-चार मिनट में ही समाप्त हो जाये."

"नमस्ते हुजूर."

"नमस्ते. आपको मेरे सैकरेटरी ने बता दिया होगा कि मैं आज बहुत व्यस्त हूं. एक मिनट की भी फुरसत नहीं. यदि आप कल आ जायें तो ठीक रहेगा."

"हुजूर, कल हमें कहीं और मुलाकात करनी है. हम केवल चार मिनट ही लेंगे."

"यही तो समस्या है कि चार मिनट कहां से लाऊं. मेरे पास तो एक मिनट भी नहीं होता. मुझे तो मरने की भी फुरसत नहीं. सुनिये प्रातः चार बजे उठता हूं. जरूरी कामों से निपटकर फाइलें लेकर बैठ जाता हूं. एक-एक अक्षर पढ़ता हूं, तौलता हूं, परखता हूं, सूंघता हूं और फिर सोचता हूं. चार बार सोचकर जो नतीजा निकालता हूं, वह आदेश के रूप में लिखता हूं. कभी किसी से रियायत नहीं करता. आप यह जानकर हैरान होंगे कि मेरे आदेश के विरुद्ध किसी ने अपील करने का साहस नहीं किया और यदि किया, तो मुंह की खायी. सुप्रीम कोर्ट तक मेरे फैसले सराहे गये. अब आप ही बताइये समय कहां है. आराम कहां है. दिन में विदेशों से डैलीगेशन भी आते हैं. उन्हें भी सब कुछ बताना पड़ता है. सब कुछ बताने के लिये सब कुछ जानना भी पड़ता है. रेडियो न सुनूं तो मुश्किल. टेलीविजन न देखूं तो मुसीबत. अखबारों को पढ़ना बहुत जरूरी. दिन में कोई न कोई सेमीनार, गोष्ठी होती है, इसमें भी भाषण करना पड़ता है. फिर अखबारों में इसका जिकर भी होता है. डरता रहता हूं कि कोई मेरी बात को तोड़-मरोड़ कर न लिख दे. इसलिए अखबारों को गहराई से पढ़ता हूं. यह काम मैं किसी और को नहीं देता. मिलनेवालों ने अलग से नाक में दम कर रखा है. कोई रिश्तेदार लिये आता है. कोई सिफारिश लाता है. बहुत कहता हूं कि जो कुछ कहना है लिखकर भेज दो मैं पढ़ लूंगा, परंतु वे तो नाजायज काम कराने के लिए आते हैं, लिखकर कैसे लायें. मना करने पर नहीं मानते. इस देश से भ्रष्टाचार समाप्त हो तो कैसे. सच तो यह है कि घर की कभी खबर नहीं ली. बीवी नाराज, बच्चे दुखी. किसी से बात करने का समय नहीं. उद्घाटन, वैराइटी शो और गजब तो यह कि मिलनेवालों को न जाने कैसे पता चल जाता है, वहां पहुंच जाते हैं, मतलब यह है कि. . ."

"एक मिनट क्षमा करें."

"क्या बात है?"

"हुजूर डाक आ गयी है, आज तो बहुत पत्र हैं विदेशों से भी हैं और. . ."

"तुरंत भेजो."

"देखा आप साहिबान ने. आप समझते होंगे मैं डाक सरसरी नजर से देखूंगा और नीचे फैंक दूंगा. जी नहीं, हर पत्र का उत्तर मैं स्वयं लिखता हूं. मैंने इतनी तालीम इसलिये हासिल नहीं की कि उसे काम में न लाऊं. और हां. . . एक मिनट. . ."

"सैकरेटरी, क्या बात है, मुझे डिस्टर्ब न करो, मैं बहुत जरूरी बात कर रहा हूं."

"हुजूर, आप ने हमें तो चार मिनट नहीं दिये और हमारे बीस मिनट ले लिये और आपने हमें बैठने तक को नहीं कहा."

"खेद है, मैं भूल गया. काम में सब कुछ भूल जाता हूं. आप बैठिये मैं चाय मंगवाता हूं. हां तो मैं कह रहा था कि मुझे एक मिनट की भी फुरसत नहीं. . ."

"अरे क्या. . . आप चल दिये? पूरी बात भी नहीं सुनेंगे क्या आप?" □

● दीवान स्ट्रीट, नाभा-147201

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 15 अप्रैल, 84 तक इस पते पर भेज दें——**संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 353), 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश : 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

▣ छाया : धर्मवीर जयनर
कनखल इंजीनियरिंग इंस्टिट्यूट, 431-32 महात्मा गांधी मार्ग (पहाड़ी बाजार) कनखल, हरद्वार (उ. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेक्सोना आपकी त्वचा की देखभाल करता है...

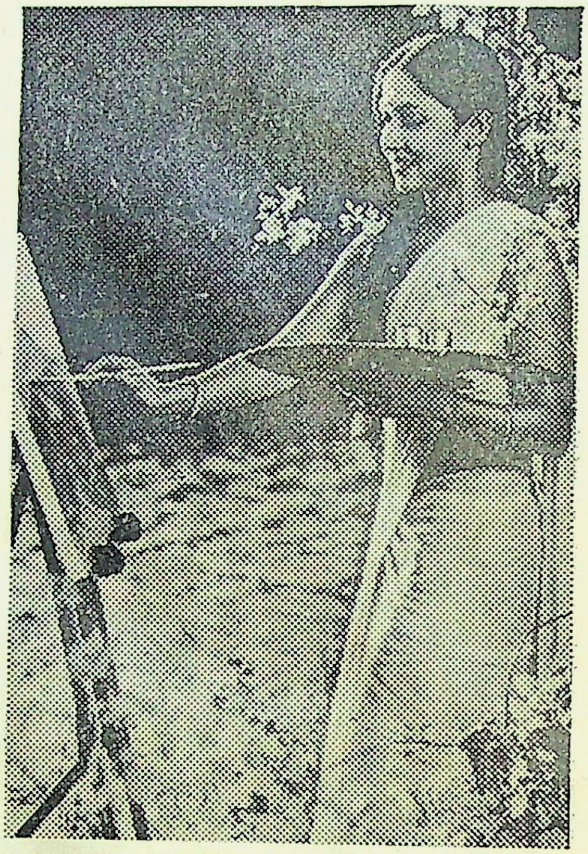

इसे कोमल और उज्ज्वल रखता है

रेक्सोना—इसमें मिले हैं चार कुदरती तेल— हापुशा, दालचीनी, लौंग, टेरिबिंथ. रेक्सोना से नहाइए —यह आपकी त्वचा को कोमल और उज्ज्वल बनाए रखता है. इसकी मनमोहक खुशबू आपको पहरों महकाए. रेक्सोना—आपकी त्वचा की कुदरती देखभाल के लिए.

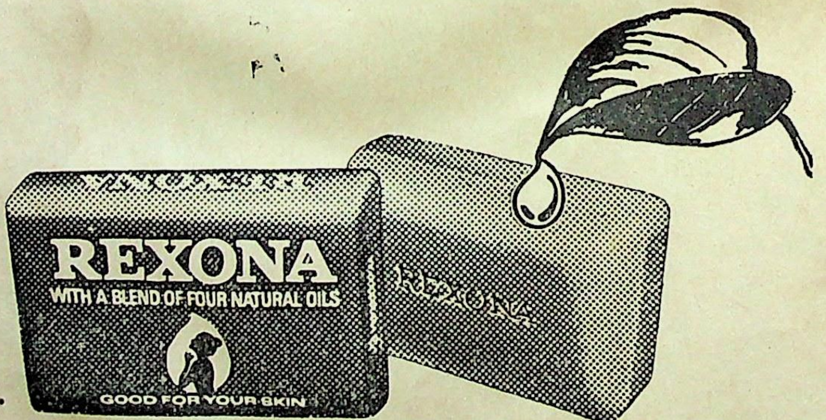

रेक्सोना आपकी त्वचा के लिए गुणकारी है

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

LINTAS-RX-79-203 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजातंत्र में बुनियादी अधिकार

विनोदशंकर शुक्ल

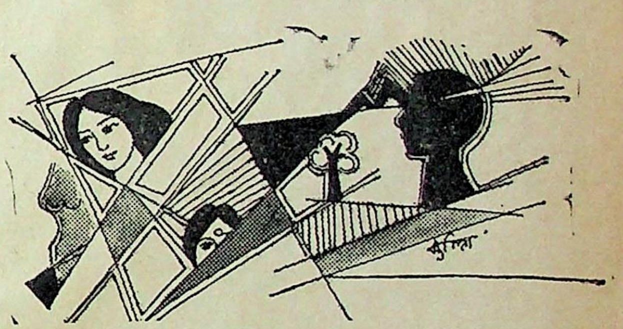

हे दिव्यात्माओ, इस प्रकार मैंने बुनियादी अधिकारों का वृत्तांत आपसे कहा. जो नागरिक इन बुनियादी अधिकारों का प्रयोग बुद्धिपूर्वक करता है, उसके लिए स्वर्ग कहीं है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है–

एक समय नैमिषारण्य में उपस्थित अट्ठासी हजार ऋषियों ने पुराणों के जाननेवाले महर्षि सूतजी से पूछा, "भगवन्, प्रजातंत्र में बुनियादी अधिकार क्या होते हैं? इन अधिकारों का प्रयोग कैसे किया जाता है—यह जानने की हमारी बड़ी इच्छा है. सो, आप समझाकर कहिए."

सूतजी बोले, "हे तपोधनो, आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है. प्रजातंत्र में बुनियादी अधिकारों का स्वरूप अत्यधिक व्यापक है. आपकी पवित्र जिज्ञासा के समाधान के लिए मैं उसका विवेचन करता है, आप ध्यानपूर्वक सुनिए.

द्विजश्रेष्ठो! महाभारत के केंद्र में जिस प्रकार वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण स्थित हैं, उसी प्रकार प्रजातंत्र के केंद्रबिंदु बुनियादी अधिकारों को जानिए. प्रजातंत्र में बुनियादी अधिकार का अर्थ है, अपनी-अपनी बुनियाद को मजबूत करने का अधिकार. यही कारण है कि प्रजातंत्र में हर नागरिक अपनी-अपनी बुनियाद को मजबूत करने में लगा रहता है.

संतो! व्यक्ति की बुनियाद मजबूत होने से प्रजातंत्र की बुनियाद स्वयमेव मजबूत होती जाती है. भारत में प्रजातंत्र की जड़ें इतनी गहरी इसीलिए हैं कि यहां सत्तालोलुपों की अर्थव्यवस्था पर बुनियाद उतनी ही मजबूत है, जितनी चीन की सीमा पर चीन की दीवार. स्वतंत्र भारत के संविधान में ऐसे छह बुनियादी अधिकारों का प्रावधान है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपनी जड़ों को मजबूत कर सकता है.

ऋषियो! पहला बुनियादी अधिकार है, समानता का अधिकार. इस अधिकार के अंतर्गत सभी नागरिक समान हैं. प्रजातंत्र में चोर और साहूकार एक ही घाट पर पानी पीते हैं. मूर्खों और विद्वानों की राय में कोई अंतर नहीं माना जाता. अयोग्य लोगों को भी योग्यों के बराबर नौकरी के अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं. यहां दस्यु भी उतने ही श्रद्धेय हैं, जितने धर्मात्मा! दरवेश की भी जय-जयकार की जाती है और डाकू की भी. बड़ा समदर्शी देश है.

तपस्वियो, अब मैं दूसरे बुनियादी अधिकार की व्याख्या करता हूं. यह अधिकार है, स्वतंत्रता का अधिकार. भारतीय नागरिकों को अनेक तरह की स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं. यहां सत्तासीन सदा सत्ता पर बने रहने के लिए स्वतंत्र हैं और विरोधी उसे सत्ता से खींचने के लिए. प्रजातंत्र में सत्ताहरण का नाटक सदा चलता रहता है. संसद और विधानसभाओं में सत्ता की द्रोपदी का चीरहरण नित्य की बात है. प्रजातंत्र में हर सांसद और विधायक स्वयं को बेचने के लिए स्वतंत्र है. वह जब चाहे, तब अपना धर्म, ईमान, निष्ठा और नैतिकता को बेच अथवा गिरवी रख सकता है. इस अबाध स्वतंत्रता के कारण ही भारत को राजनीतिज्ञों का स्वर्ग कहा जाता है.

महात्माओ, भारतीय प्रजातंत्र में हर पदासीन को रिश्वत लेने की स्वतंत्रता प्राप्त है. साथ ही देनेवाला भी पूरी तरह स्वतंत्र है. वस्तुतः 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' मुहावरे के आधार पर ही आज इतने विशाल प्रजातंत्र का काम चल रहा है. रिश्वत न हो तो फाइलों के चक्के जाम हो जायें और प्रजातंत्र पटरी से फिसल जाये.

जिज्ञासुओ, प्रजातंत्र में हर व्यापारी मिलावट के लिए स्वतंत्र है. भारत में वस्तुओं का सदैव अभाव रहता है. व्यापारी मिलावट से अभाव को दूर करने का प्रयत्न करते हैं. मिलावट से वस्तु अपनी मात्रा से तीन गुनी बढ़ जाती है. इससे अधिकतम उपभोक्ता उसका उपयोग कर सकते हैं. घोड़े की लीद, गोबर, लकड़ी का बुरादा और कंकड़-पत्थर जैसी तुच्छ वस्तुओं की उपयोगिता आज व्यापारियों ने सिद्ध कर दी है. भारतीयों का औसत स्वास्थ्य भी अब शुद्ध वस्तुओं के पचाने योग्य नहीं रहा. अतः यह मिलावट समाज के लिए बहुत कल्याणकारी है. सरकार को चाहिए, जो वस्तुएं यदा-कदा धोखे से शुद्ध रूप में बाजार में आ भी जाती हैं, उनके लेबलों पर यह चेतावनी अंकित करा दे—सावधान, वस्तु शुद्ध है. किसी दुर्घटना के लिए सरकार उत्तरदायी नहीं होगी.

संतो, जनतंत्र में प्रत्येक नागरिक को संघ बनाने, भाषण या सभा करने की स्वतंत्रता प्राप्त है. इस अधिकार के कारण ही इस देश में संघों एवं नेताओं की संख्या दुर्योधन की अक्षौहिणी सेना से अधिक है. स्थिति यह है कि हर व्यक्ति एक संघ है और हर चार व्यक्ति एक सभा. जिधर देखो, वहीं संघ और सभाएं दिखाई पड़ती हैं. जागरूक लोकतंत्र के यही लक्षण हैं.

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो, स्वतंत्र भारत में छात्रों को तोड़फोड़ करने की पूर्ण स्वतंत्रता है. दरअसल स्वतंत्रता के पश्चात युवा-शक्ति के पास कोई काम नहीं है. राष्ट्र का जो निर्माण होना था, वह हो चुका. निठल्ली बैठी युवा-शक्ति आखिर क्या करे? वह राष्ट्रीय-संपत्ति की ही होली जलाती है. आक्रोश दूर करने का यह बड़ा सरल उपाय है. सरकारी बसें, इमारतें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक का व्यंग्यचित्र
चित्रकार : चंचल

आदि जलाकर युवा लोग शांत हो जाते हैं. यही यहां की युवा-क्रांति है.

श्रेष्ठो, भारतीय नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है. स्वतंत्र भारत में अनेक नये धर्म, संप्रदाय और देवताओं का आविर्भाव हो चुका है. यथा-सत्ताधर्म, नगदनारायण धर्म, समाजवाद धर्म आदि-आदि. सत्ताधर्म के उपास्य हैं सत्ता-देव, नगदधर्म के भगवान नगदनारायण और समाजवाद धर्म में समाज-भगवान की पूजा अर्चना की जाती है.

सत्ताधर्म के अनेक संप्रदाय हैं, जैसे कुर्सी संप्रदाय, कुर्सी खेंच संप्रदाय, हटाओ संप्रदाय, बचाओ संप्रदाय, दलबदल संप्रदाय आदि. सत्ता उपासकों को कुर्सी देवी की आराधना करनी पड़ती है. यह देवी आसानी से प्रसन्न नहीं होती. साधक पहले दलीय टिकट प्राप्त करने के लिए भगीरथी उठा-पटक करता है. फिर चुनाव दंगल में दोनों हाथ जोड़ और सिर झुकाकर 'वोट-वोट' के मंत्र का जाप करता है. अपने अहं का परित्याग कर हर छोटे-बड़े, खरे-खोटे के सम्मुख दयनीय मुद्रा में वोट के लिए गिड़गिड़ाता है. चुनाव दंगल में विजयी होने के बाद उसकी साधना का तृतीय चरण होता है. अब वह मंत्री पद की प्राप्ति के लिए भांति-भांति के शीर्षासन करने में संलग्न हो जाता है. राजनीति में स्थापित महंतों के सम्मुख दुम हिलाता है, उनके तलुए चाटता है. दुत्कारे जाने पर भी घिघियाना बंद नहीं करता और 'महंत' से आत्म-समर्पण की मुद्रा में निवेदन करता है—आप मुझे कुर्सी दीजिए, मैं आपको अपनी आत्मा, विवेक, ईमान देता हूं. कुर्सी पाने के बाद मैं अपने दिमाग से सोचना बंद कर दूंगा. अपनी आंख से देखना बंद कर दूंगा, अपने कानों से सुनना बंद कर दूंगा. मैं अपने अस्तित्व को आप में विसर्जित कर दूंगा. आप ब्रह्म, मैं जीव, आप विश्व, मैं साधक, आप गीत, मैं गायक, आप शीर्ष, मैं सीढ़ी—मैं वचन देता हूं कि मैं किंचित भी 'मैं' न रहूंगा, पूर्णतः 'आप' हो जाऊंगा.

इस स्तुति के बाद साधक की साधना सफल होती है. उसे मंत्री पद मिल जाता है. मंत्री पद पाते ही वह अपने को तारता है, अपनों को तारता है और इस लोक में बंगला, मोटर और विदेश-यात्रा आदि नाना प्रकार के सरकारी सुखों का सेवन कर अंत में समस्त राष्ट्र को शोकाकुल छोड़ बैकुंठ को जाता है. सत्ताधर्म के बाद सर्वोपरि है, नगदनारायण धर्म. इस धर्म में कालाधन संप्रदाय, रिश्वत संप्रदाय, गबन संप्रदाय एवं चंदा संप्रदाय प्रमुख हैं. ब्रह्मा, विष्णु और महेश के स्थान पर अब सत्ता, नेता और पैसा नामक त्रिदेवों का बोलबाला है.

ऋषियो, प्रजातंत्र में हर नागरिक को संपत्ति उपार्जित करने का अधिकार है. इस अधिकार का उपयोग कर लोग ब्लैक-मार्केट और ब्लैक-मनी द्वारा रातों-रात लखपती बन रहे हैं. अब घोड़े दौड़ते हैं और मुद्रा मनुष्य को मिलती है. मटके के झटके से भाग्य के बंद द्वार खुल जाते हैं. लाटरी की कृपा से मनुष्य को लखपती बनते देर नहीं लगती. तस्करी का जहाज आज हजारों को दरिद्रता के सागर से तार रहा है. परमिट-कोटा लक्ष्मी बनकर अनेकों के घरों पर बरस रहा है. चुनाव की जीत मुद्रा-आयाम के सारे बंद स्रोतों को खोल देती है. थानेदारी, फूड इंस्पेक्टरी, आयकर, आबकारी और लोकनिर्माण विभाग की नौकरियां पाकर व्यक्ति धनार्जन का पासपोर्ट ही प्राप्त कर लेता है. आज सर्वत्र श्यामा लक्ष्मी (काले धन) का ही पूजन होता है.

साधुओ, प्रजातंत्र में नागरिकों को शोषण के विरुद्ध अधिकार प्राप्त रहता है. अब प्रत्याशी मतदाताओं के वोट निशुल्क लेकर उनका शोषण नहीं कर सकते, उन्हें वोट खरीदना पड़ता है. महंगाई अधिकारी वर्ग का शोषण न कर सके, इसलिए सरकार राहतकार्य खोलकर उन्हें राहत दिलाती है. प्रजातंत्र में अंतिम मूलाधिकार है—संस्कृति और शिक्षा का अधिकार. इस अधिकार द्वारा नागरिकों की भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षा प्रदान की गयी है. इस अधिकार के कारण ही हर नागरिक अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा और संस्कृति को राष्ट्रीय संस्कृति मानता है. इसीलिए यहां भाषाएं और संस्कृतियां सौतनों की तरह निरंतर आपस में लड़ती रहती हैं. अंग्रेज जब जाने लगे तो अवैध शिशु की तरह अंग्रेजी को उन्होंने यहीं छोड़ दिया. सरकार को शिशु पर दया आ गयी और उसने उदारतापूर्वक उसे अपना लिया. तब से अंग्रेजी ही भारत की राष्ट्रवाणी है. यहां के कर्णधार राजकाज, चिंतन और लेखन आदि गंभीर कार्यों में अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं और 'वोट मांगने' जैसे छोटे-मोटे कार्यों के लिए हिंदी का उपयोग कर लेते हैं.

संतो, गणतंत्र में हर व्यक्ति को इच्छित शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है. यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के शिक्षा के कारखानों में बी. ए., एम. ए., एम. बी. बी. एस., बी. ई. आदि उपाधियों का माचिस की कांडियों से अधिक उत्पादन हुआ है. संभवतः वह दिन शीघ्र आये, जब भारत पढ़े-लिखे बेरोजगारों का निर्यात कर विदेशी मुद्रा कमाने लगे. इससे एक ओर बेरोजगारी की समस्या भी दूर होगी और दूसरी ओर जनसंख्या का दबाव भी कम होगा. दुर्लभ विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी सो अलग. एक पंथ दो काज.

हे दिव्यात्माओ, इस प्रकार मैंने बुनियादी अधिकारों का वृत्तांत आपसे कहा. जो नागरिक इन बुनियादी अधिकारों का प्रयोग बुद्धिपूर्वक करता है, उसके लिए स्वर्ग कहीं है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है. □

● सेंट जोसेफ चर्च के पास, बैन बाजार, रायपुर (मध्यप्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे

▫ भगवती शरण मिश्र

हिरण्यकश्यप राक्षस था और उसने ईश्वर को चुनौती दे डाली. पर आज हमारे बीच चलते-फिरते हम जैसे ही वे लोग कौन हैं, जो ईश्वर के लिए चुनौती बनते जा रहे? - आदमी के जीवन पर 'सरकार' और 'ईश्वर' के आधुनिक रूपों को रेखांकित करती व्यंग्य-कथा –

वह मुझसे बड़े हैं, पर कठिनाई यह है कि वह अपने को सबसे बड़ा समझते हैं. मैं उनके सामने नतमस्तक होने को बाध्य हूं, पर विडंबना यह है कि उनका मस्तक कहीं भी नत नहीं होता. . .देवालयों में भी नहीं.

मेरे बराबर विनम्र रहने पर भी उनका मुझ पर धनुष की तरह तने रहने और अपने व्यंग्य-बाणों से मुझे विद्ध करने को तत्पर रहने के मूल में कहीं न कहीं मेरा देव-प्रेम भी है. उनकी ईर्ष्या-भावना पौराणिक देवताओं के आपसी वैर-विद्वेष को भी अंगूठा दिखाती है और 'और देवता चित्त न धरई' के आर्ष वाक्य के कायल उनके लिए यह काबिले-बर्दाश्त नहीं कि उनका यह बेमोल का गुलाम किन्हीं और चरणों में भी झुके. . .चाहे वे प्रतिमा के पाषाणी चरण ही क्यों न हों.

ऐसे उनके पद-युगल मेरे (आपके भी या आपकी जगह किसी और के भी) सिर को अपना पुनीत स्पर्शप्रदान करने को सदा सुविधाजनक रूप में सुलभ रहते हैं. यह कई रूपों में होता है. घर पर रहें तो कंगारू के अगले पैरों की मुद्रा में उनके पद-पंजे (आप चाहें तो पंकज ही कह लें) इस तरह उनके शरीर से अलग-थलग स्थापित लगते हैं कि आपका काम, बस अपने आतुर मस्तक को उन पर रोप देना होता है. खोजने-ढूंढने, धोती अथवा शाल-चादर के अंदर से उन्हें खींच निकालने के कष्ट से वह आपको मुक्त ही रखना चाहते हैं. यही कारण है कि उन्हें आज तक कभी पद्मासन या सहजासन की मुद्रा में बैठे नहीं देखा गया क्योंकि तब उनके चरणों की भौगोलिक स्थिति उनके भक्तों के लिए बड़ी असुविधाजनक सिद्ध होती.

बाहर रहे तो पदत्राण ऐसे कि पैर अधिक से अधिक नग्न (अंग्रेजी के प्रयोग के लिए माफ करें तो 'एक्सपोज्ड') रहें. भले ही इस कारण श्रद्धालुओं के सिरों को श्रद्धास्पद के पैरों तक पहुंचने में अवांछित धूल-गर्द और गंदगी से निपटना पड़े. पर उनकी भी विवशता है. गोस्वामी जी के गुरु चरणों के पद-पराग की तरह अपनी पद-धूली को भी आपकी आंखों की ज्योति के बहुत अनुकूल मानते हैं– 'श्री गुरु मद रज मृदुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन.'

इसी कारण जूतों अथवा सैंडिलों के बदले उनके पैर अगल-बगल, आगे-पीछे से खुले कोल्हापुरी चप्पलों से ही सुशोभित रहते हैं. कभी-कभी भक्तों की सुविधा का अधिक खयाल किया तो बाथ रूम चप्पल ही बाहर में आ गये.

एकाध ऐसे हादसे के बाद उन्होंने एक नियम बना दिया है. डी. टी. सी. के बस स्टापों में लगी लाइनों की तरह अब उनके पद-पूजकों को भी पंक्ति-बद्ध होना पड़ता है. तब इसका एक अलग सुख है जितनी बड़ी पंक्ति होती है उनके अंदर उतना ही सुख भरता है. यही कारण है कि घर पर हुए तब तो

लेखक का व्यंग्यचित्र
चित्रकार : चंचल

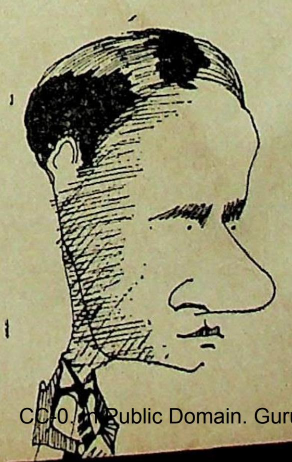

तब तक उनके बैठक की यवनिका नहीं उठायी जाती जब तक दरवाजे पर मुंहवाली पंक्ति की पूंछ बाहर की सड़क तक नहीं पहुंच पाती. रविवार और अन्य छुट्टियों के दिन यह पंक्ति अच्छी बड़ी होती हैं और उनकी कोठी के सामने से गुजरनेवालों को कनाट प्लेस के हनुमान मंदिर की मंगलवारीय भीड़ याद आ जाती है.

पर जैसा कि पहले अर्ज किया गया उन्हें हनुमान, शिव और काली के सदृश- देवी-देवताओं में कोई रुचि नहीं और किसी कट्टर अद्वैतवादी की तरह वह आत्म ब्रह्म की आस्था के कायल हैं. उनके समीप मंडरानेवाले तो यहां तक कहते हैं कि किसी अद्वैतवादी योगी-यति को सधे या नहीं सधे पर उन्हें 'अहम ब्रह्मास्मि (मैं ही ब्रह्म हूं) पूरी तरह सध गया है और उनके हर उठते-गिरते श्वास से यही ध्वनि स्पष्ट ध्वनित होती रहती है. जिसे विश्वास नहीं हो वह उनके कलेजे से अपने कान लगा कर जब चाहे इसे सुन सकता है. इसी बात पर उनसे मेरी पहली खट-पट हुई थी.

"आप अपने को भगवान क्यों मानते हैं?" एक बार अकेले पड़ने पर मैंने पूछ लिया था.

"तो क्या आपको मानूं?" उन्होंने पलटकर पूछा था.

"नहीं, मेरा मतलब था, अपने को भगवान कहनेवालों की बड़ी दुर्गति हुई है. आपको हिरण्यकश्यप की कहानी तो याद होगी." मैंने डरते-डरते जोड़ा था.

"यह हिरण्यकश्यप कौन था?" वह पूछते हैं तो मुझे आश्चर्य नहीं होता क्योंकि बावजूद उनकी लाइब्रेरी की सभी देशी-विदेशी पुस्तकों के उनके ज्ञान के बारे में मुझे कोई भ्रम नहीं रहा.

"वह एक राक्षस था." मैं प्रश्न का जवाब देता हूं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

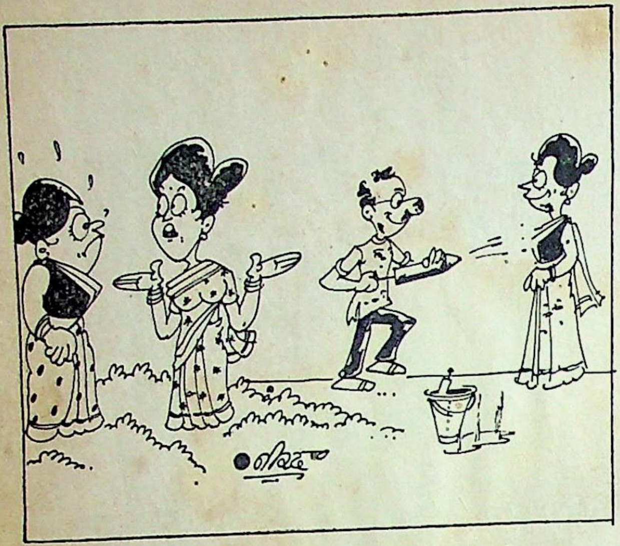

'वे' किसी दूसरों के साथ ही सही . . . कम से कम इसी बहाने नहा तो लेंगे !

व्यंग्यचित्र : नीरद

"तो आप मुझे राक्षस समझते हैं?" उनका चेहरा तमतमा आता है तो मुझे अपनी गलती का एहसास होता है और मैं उसे सुधारने का प्रयास करता हूं, "मेरा मतलब था वह राक्षस था, अतः भगवान को नहीं मानता था, आप मुझे मनुष्य होकर भगवान की 'चेलेंज' करें यह. . ."

"चुप रहिए!" वह मुझे डांटते हैं. पर मैं चुप नहीं रहता.

"पहले तो आप अपने को सरकार समझते थे?" मैं उन्हें याद दिलाता हूं. दरअसल हम दोनों का परिचय ही कुछ ऐसे माहौल में हुआ था कि मैं वह घड़ी अब तक भूल नहीं पाया था.

उस दिन हम दोनों एक ही गाड़ी के एक ही डिब्बे में यात्रा कर रहे थे. उसमें वातानुकूलित डिब्बा नहीं था, अतः वह मेरी ही तरह प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चल रहे थे.

मैं अगल-बगल और आमने सामने की स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ और असंपृक्त सुबह का अखबार पढ़ रहा था कि मेरे हाथों को एक करारा झटका लगा और इसके पहले कि मैं समझता कि क्या हुआ मैंने पाया कि मेरा अखबार सामनेवाले के हाथों में था और वह उसमें अपनी नजर चुभा चुका था. मैंने देखा कि सफेद धोती-कुर्ते और बंडी में सजे और सुनहली फ्रेम के चश्मे से मंडित आंखोंवाले किसी सज्जन से मेरा पाला पड़ चुका था. कुछ क्षण तो मैं इस अप्रत्याशित घटना पर हक्का-बक्का हो उनके चेहरे को ताकता रहा पर जब उन्होंने मेरी ओर दृष्टिपात करने की भी आवश्यकता नहीं समझी तो मैंने टोका, "आपने मेरा अखबार क्यों छीना."

"मैं पहले पढ़ूंगा," उन्होंने अखबार से अपनी चश्मा-चढ़ी आंखों को उठा तेज-तर्रार स्वर में कहा.

"क्यों?" मैंने आश्चर्य से पूछा.

"क्योंकि मेरा हक पहले बनता है."

"आप होते कौन हैं?" मैंने भी तेज स्वर में कहा.

"आपको नहीं मालूम है क्या?" वे गुर्राये.

"नहीं."

"मैं सरकार होता हूं!" उन्होंने जवाब दिया और मैंने अपना सिर नोचा. अपनी अज्ञानता पर तरस खाया. अब तक मैंने 'सरकार' नामक जीव को कहीं देखा नहीं था. राजनीति-विज्ञान के ग्रंथों और अखबारों में ही इससे मेरा साबका पड़ता रहता था. उसकी परिभाषा को लेकर भी कई बार छात्र-जीवन में रगड़ा हो गया था. और यह सरकार थी कि सशरीर मेरे सामने हाजिर थी. मैं अपना अहोभाग्य कहूं या अपनी अनभिज्ञता को कोसूं, कुछ समझ नहीं पा रहा था कि उन्होंने ही मेरी बुद्धि पर तरस खाया, "कल का अखबार नहीं पढ़ा?"

"पढ़ा था." मैंने बिना संदर्भ समझे ही जवाब दिया.

"जरूर वह भी हिंदी का रहा होगा." उन्होंने मेरे ही अखबार पर हिकारत की दृष्टि डालते हुए कहा.

"जी हां, हिंदी का ही था."

"इसे देखिए." उन्होंने अपने ब्रीफकेस से अंग्रेजी अखबार देते हुए कहा.

"मैं कुछ समझा नहीं."

"आप क्या समझिएगा. चार आदमियों के बीच वह जो आदमी खड़ा है वह मैं ही हूं. मिलाइए चेहरा. माइक भी मेरे सामने है. कल की 'रिशफलिंग' में मैं आ गया. उप मंत्री की शपथ ले रहा हूं. समझे?"

मैं समझ गया था. समझ गया था कि किसी मामूली आदमी नहीं सरकार से मेरा आमना-सामना हुआ था और सरकार को पूरा हक था कि मेरे ही अखबार को मेरे ही हाथों से खींचकर कहे कि पहले मेरा हक बनता है.

उपर्युक्त घटना के बाद हमारा संबंध प्रगाढ़ हो आया था. प्रगाढ़ क्या हो आया था, उन्होंने अपने ही विभाग में मेरा स्थानांतरण करा लिया था क्योंकि हिंदी के नाम पर चाहे वे जो नांक-भौं सिकोड़ें, भाषण उन्हें हिंदी में ही देने पड़ते थे और वे जानते थे कि हिंदी अखबार पढ़नेवाला आदमी ही हिंदी का भाषण तैयार कर सकता है.

आपको शायद लगता हो कि मेरी विवशता उसी दिन से शुरू हुई होगी जिस दिन मैं उनके विभाग में लगा था और अन्य लोगों की देखा-देखी शनैः शनैः मैं भी उनके चरण-चुंबन से अपने को धन्य करने लगा था. पर बात यह नहीं थी. मैं इतनी आसानी से नहीं झुका था. जैसा कि ऊपर की हिरण्यकश्यपवाली घटना से आपको लगा होगा, शुरू-शुरू में मैं काफी अकड़ा हुआ था और उनके भाषण आदि मैं जो तैयार कर दूं तथा पद के स्तर पर मैं चाहे जो उनसे उन्नीस पड़ता होऊं पर व्यक्तित्व के स्तर पर मैंने अभी कोई समझौता नहीं किया था और मौके-बे-मौके मैं ही उन पर हावी होने के प्रयास में लगा रहता था. इसका खास कारण यह था कि अखबारवाली घटना मैं चाह कर भी भूल नहीं पाता था और मुझे लगता था कि मेरा साबका सरकार से पड़ा था और जरा भी मैंने अवसर दिया तो वह सरकार रूपी बिल्ली मुझ आदमी रूपी चूहे को धर दबोचेगी.

अब जब मैं उनके बहुत नजदीक आ गया था तो उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर-बाहर दोनों से मैं समीप से परिचित होने लगा था. मुझे उस समय बहुत दुख हुआ था जब मैंने पाया था कि वह बाहर से जितने ही तेज-तर्रार थे, भीतर से उतने ही खोखले. खुले कमरों और फुटपाथों, प्लेटफार्मों पर भले ही अनेक उनके चरणों पर झुकते थे, पर उन्हीं के बंद कमरों में मैंने स्वयं उनको कइयों के चरणों पर झुकते ही नहीं घंटों उन्हें अपने सीने और मस्तक से लगाये रखे भी देखा था.

"यह आप क्या करते हैं?" मैंने एक दिन पूछा था.

"क्या?"

"दुनिया आपके चरणों पर झुकती है और आप इनके चरण पलोटते हैं."

"ये मेरे माई-बाप हैं."

"क्या बोलते हैं, सरकार के भी माई-बाप होते हैं?"

"आप कुछ ज्यादा ही बोलने लगे हैं. आप समझते हैं आप मेरा भाषण क्या लिख देते हैं, मुझ पर बहुत अहसान करते हैं. खैर आप भी आ जाइएगा रास्ते पर. पूछ लीजिए अभी जो पूछना है."

"मैं कह रहा था कि ऐसी क्या विवशता है कि आप इनके चरणों पर गिरते हैं जब सारी दुनिया आपके. . ."

"मैंने कहा न ये मेरे सब कुछ हैं. उनके हाथ में मेरे राज हैं. मैं इनके चरण नहीं चूमूं तो ये अपना मुंह खोल देंगे और जब ये अपना मुंह खोल देंगे तो मैं कहीं का न रहूंगा."

"तब आप सरकार नहीं रहकर आदमी हो जायेंगे, यही न?"

"अभी तक तो यही समझ लीजिए."

"एक बात पूछूं?" मैंने कहा.

"पूछिए, आप मेरा भाषण जो लिखते हैं."

"मैं सोच रहा था, आपके समान व्यक्ति के साथ राज भी क्या हो सकते हैं? बाहर से आप इतने साफ-सुथरे, गांधीवादी लगते हैं."

"आपने अच्छी बात छेड़ी." वे प्रसन्न हो आये, "मैं केवल गांधीवादी ही नहीं, गांधी से भी एक कदम आगे हूं. गांधीजी और मुझमें एक मौलिक अंतर है. वहां मैं गांधी के भी कान काट लेता हूं."

"अच्छा!" मैं और आश्चर्यचकित हुआ. "क्या है वह अंतर?"

"गांधी साध्यों के साथ-साथ साधनों की पवित्रता पर भी ध्यान देने की मूर्खता के कायल थे. 'एंडस' के साथ 'मिन्स' को भी अच्छा होना था. तभी आजादी की लड़ाई लंबी खिच गयी. सत्य भी चाहिए, अहिंसा भी चाहिए, अपरिग्रह भी और उधर अंग्रेजों को भागना भी चाहिए. होना वही था जो हुआ, बुढ़ापे में आजादी आई और छह महीने लगते-लगते परलोक 'कॉल' आ गया. कहां भोगा आजादी का सुख?"

"तो आपके खयाल से गांधीजी ने आजादी का सुख भोगने के लिए आजादी प्राप्त की थी?"

"अरे, छोड़िए इस बात को. मैं तो 'मिन्स' और 'एंडस' की बात कर रहा था. मैं साधन में नहीं साध्य में विश्वास करता हूं. कहा न, यहीं पर मैं गांधी से आगे हूं. अपने लक्ष्य, अपने साध्य की प्राप्ति के लिए मैं किसी भी साधन का उपयोग कर सकता हूं. 'सो लौंग ऐज एण्ड्स आर गुड मिन्स आर गुड." उन्होंने अपनी अंग्रेजी जड़ी.

"किसी भी साधन का?"

"हां."

"किडनैपिंग, एबडक्शन से लेकर मर्डर तक का?" मैंने उन्हीं की भाषा का प्रयोग ज्यादा उपयोगी समझा.

"हां."

"इसीलिए आपके राज भी हैं और इसीलिए आप इनके चरणों पर लोटते भी हैं."

"हां, आप अब समझ गये. पर किसी दिन आप ज्यादा ही समझ जायेंगे जब आप भी औरों की तरह मेरे चरणों पर. . ."

"ऐसा नहीं होगा. मैं आपका भाषण लिखने आया हूं और वही लिखता रहूंगा. मैं आपकी तरह गांधी से भी एक कदम आगे नहीं हूं. यों तो आपकी तरह मेरे बड़े-बड़े लक्ष्य नहीं हैं, पर जो हैं, उनके साधन भी उन्हीं के अनुरूप हैं. मैं भी 'साध्य' के साथ 'साधन' की श्रेष्ठता में विश्वास करता हूं."

"रुकिए, आप अभी कोई भाषण नहीं लिख रहे. ये सब सुनने-सुनाने की चीजें हैं. पर मैंने कहा न आप भी एक दिन आइएगा 'लाइन' में."

"किस लाइन में?"

"उसी में जो मेरी चरण-वंदना के लिए लगती है."

"ऐसा नहीं होगा."

"देखते रहिए."

और सचमुच देखते-देखते वह सब हो गया था जिसने पासा पलट दिया था. पहले मैं जो उनकी बातों का मुंहतोड़ जवाब दिया करता था उनके व्यंग्य-बाणों को सहने के साथ-साथ उनके चरणों में झुकने को भी बाध्य हो गया था.

"देवी-देवताओं और मंदिरों के चक्कर आपको इस 'चक्कर' से नहीं छुड़ा सकते. उद्धार होगा तो आपका इन्हीं चरणों में. आप तो अपने को पढ़े-लिखे बताते हैं. क्या कहा है गीता में 'सर्व धर्मान् परित्यज्य. . .' हां सबको छोड़कर केवल मेरी ही शरण में रहिए तो. . ." उस दिन उन्होंने कहा था.

"पर आपको मुझे इस तरह नहीं फंसाना था."

"और उपाय भी क्या था? आप ही के गांव में मर्डर हुआ तो आप के सहोदर भाई को न फंसाते तो क्या अपने बेटे को फंसाते? कोई बात नहीं. तब तक जब तक आपको मेरे चरणों का आसरा है, बात एफ. आई. आर. से आगे नहीं बढ़ेगी. छोड़िए, इन देवी-देवताओं का चक्कर. आपके भाई के गले के ऊपर लटकते फांसी के फंदे से मुक्ति दिलाने की ताकत केवल मेरे हाथों में है. किसी भी 'साधन' का प्रयोग मैं इस पुनीत साध्य की प्राप्ति के लिए कर दूंगा. मैं गांधी नहीं हूं. आयी बात समझ में? हा! हा! हा! हा!" उन्होंने अट्टहास किया और मेरी पीठ पर अपना वरद हाथ फेर दिया. □

●संयुक्त निदेशक, रा. भा. रेल मंत्रालय, नयी दिल्ली-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामा
वामा
वामा

विचारशील महिलाओं की विशिष्ट मासिक पत्रिका

वामा सिर्फ पत्रिका ही नही एक बेहतर दृष्टिकोण भी है। **वामा** एक ताज़गी भरे सरल अन्दाज़ और परिचित भाषा में नारी के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को उजागर करती है। **वामा** निश्चय ही सामान्य महिला-पत्रिकाओं से हटकर है।

सरलता का मतलब सतहीपन नहीं है। वामा की आकर्षक लुभावनी सरलता के पीछे एक गहराई है। हर अंक में नया आकर्षण, नए विषय।

विषय चाहे घर-परिवार हो या देश-विदेश;
हस्तशिल्प हो या खेल की दुनिया;
साहित्य और कला हो या सैर-सपाटा;
विज्ञान हो या फिल्म-जगत;
नारी-तन की जानकारी हो या नारी-मन की;
बच्चों का पालन-पोषण हो या खुद का भविष्य-निर्माण,
नारी की निजी समस्याओं का ठोस समाधान—**वामा**

आप वामा के हर अंक का बेसब्री से इंतजार करेंगे

वामा टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS/D 1112 84/A

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप मार खां !

▣ शौकत थानवी

सांप से डरना खतरनाक है या उसे मार देना? बहादुरी और डींग में अंतर को स्पष्ट करती उर्दू व्यंग्य-कथा——

हमारे पड़ोसी रईस खान बहादुर साहब को अपनी इकलौती पुत्री के लिए वर की आवश्यकता थी और वे किसी ऐसे जानवर की तलाश में थे जो उनकी पुत्री का फरमाबदार शौहर साबित हो सके. उन दिनों यह खाकसार उनकी नजर पर तुल रहा था. वे कहने लगे, "बरखुरदार, घर पर आते-जाते रहा करो. हम लोगों में उठो-बैठो ताकि हम तुम्हारे बारे में किसी नतीजे पर पहुंच सकें...और कोई अंदाजा लगा सकें!" लिहाजा हमने बाल संवारे, नया सूट पहना और खानबहादुर साहब के दौलतखाने पर जा पहुंचे. धीरे-धीरे मेल-जोल में बेतकल्लुफी का रंग आने लगा और हम रोज उनके मकान पर जाने लगे. हर समय कोई न कोई हंगामा उनके यहां जरूर रहता था. कभी उनकी खाला की लड़कियां, कभी फुफेरी, मुमेरी बहनें उन्हें घेरे रहतीं थीं. रह गये खान बहादुर साहब, सो उनकी जिंदगी का मकसद यह था कि वह अपनी पुत्री को खुश देखें, लिहाजा वह खुद इस चहल-पहल में बराबर का हिस्सा लेते थे. और अब तो हमारी हाजिरी भी जरूरी बन गयी थी.

एक दिन जो तीसरे पहर की चाय पर पहुंचे तो फिजा ही कुछ और थी. ड्राइंग रूम का फर्नीचर सब बाहर पड़ा था. जिसे देखिए, परेशान दिखाई दे रहा था. किसी के हाथ में हॉकी है और घबराया फिर रहा है. किसी के होंठों पर लिपस्टिक है और चेहरे का रंग उड़ा हुआ है. न वह कहकहे हैं न वह चहचहे. बस, त्राहि-त्राहि का-सा आलम है. पता चला कि ड्राइंगरूम में एक सांप निकल आया था और किसी अनाड़ी ने उसे जख्मी कर दिया है. चोट खाकर, देखते ही देखते वह न जाने किधर गायब हो गया है और यह निश्चय है कि जख्मी सांप बदला जरूर लेगा. कमरे में प्रविष्ट होते ही साहबजादी साहिबा पूछ बैठी, "क्या आप भी सांप से डरते हैं?"

जाहिर है कि इस सवाल के जवाब में 'हां' सुनने के लिए तैयार थीं. नहीं तो ये सवाल ही क्यों करतीं. चुनांचे हमने बड़े इत्मीनान से कहा, "लाहौल बिला कुव्वत, डरने की क्या बात है इसमें. . ?"

यह सुनते ही उसकी आंखों में खुशी की चमक पैदा हुई और हम अपने ठीक जवाब पर झूम उठे. वह कहने लगी, "जब एक न एक दिन मरना ही है तो सांप से इतना डर क्यों?"

उनकी खाला की लड़की ने कहा, "कमाल की बात करती हो तुम परवीन? हर कोई तुम्हारे जैसा निडर कैसे हो सकता है, मेरी तो रूह कांप उठती है!"

खान बहादुर साहब जो फुलबूट पहने हाथ में एक मोटा-सा डंडा लिये फिर रहे थे, करीब आकर बोले, "डरने की चीज से न डरना अक्लमंदी की बात नहीं है. इसे मैं बहादुरी से अधिक हिमाकत कहता हूं. अगर इस वक्त सांप नहीं मारा जाता तो मुझे तो रात को नींद भी नहीं आयेगी."

परवीन ने हंसकर कहा, "डैडी, आप तो सचमुच डर गये हैं!"

खानबहादुर साहब ने मुझसे कहा, "क्या जनाब भी सांप से न डरने के हक में हैं?"

हमने परवीन की आंखों में फिर वही चमक देखने के लिए कहा, "अब तक तो डरने का मौका नहीं आया है. अगरचे कई बार सांप सामने आ चुका है."

खान बहादुर साहब ने अचंभे से कहा, "सामने आ चुका है? यानी आपका मतलब है कि सांप से मुठभेड़ हो चुकी है? अच्छा फिर...?"

अर्ज किया, "फिर क्या?. . .पकड़ा और मार डाला."

खान बहादुर साहब ने चीख पड़ने के अंदाज से कहा, "पकड़ा?. . . यानी पकड़ लिया सांप को? यह कैसे मुमकिन है? क्या तुमने खुद पकड़ा है सांप को?"

कहा, "जी हां, आखिर इसमें अचंभे की कौन-सी बात है. सांप को मारने की सबसे बहतरीन तरकीब है कि उसकी दुम पकड़कर ऐसा टका दो, जिससे कमर की हड्डी टूट जाये. . .फिर वह रेंग नहीं सकता और आसानी से मारा जा सकता है."

खान बहादुर साहब ने जल्दी-जल्दी पलकें झपकाकर कहा, "यह तुम आखिर कह क्या रहे हो. दुम भला पकड़ी किस तरह जायेगी. मैं तो मरे हुए सांप की दुम भी नहीं पकड़ सकता."

तब वे सब हमारे चारों ओर इकट्ठे हो गये. परवीन हमें बड़े फख्र से हमारी ओर देख रही थी, हम महसूस कर रहे थे कि उसे हम पर फख्र है और वह दिल ही दिल में प्रसन्न हो रही है कि मेरा होनेवाला शौहर वह है जिसमें सही मर्दानगी है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खान बहादुर साहब ने बाहर पड़े सोफे घसीटकर उन्हें फिर सजा डाला और हम सब बैठ गये. परवीन ने फिर जिक्र छेड़ा, "हां, तो आपने बताया नहीं कि दुम किस तरह पकड़ी जा सकती है."

हमने बहुत ही लापरवाही से कहा, "साहब इसका कोई खास ढंग तो है नहीं, बस जरा-सी हिम्मत की जरूरत है. हमें तो सांप दिखाई पड़ा, लपककर उसकी दुम पकड़कर कीड़े की तरह, पूरी ताकत के साथ झटक दी. बस, उसकी हड्डी टूट जाती है."

खानबहादुर साहब ने कहा, "कमाल है साहब! और शाबाश है तुम्हें!"

परवीन ने कहा, "आपने बड़े से बड़ा कितना बड़ा सांप मारा है?"

हमने कहा, "दो गज और डेढ़ गज के तो कई मारे हैं लेकिन एक बार बड़े भयानक नाग से मुलाकात हो गयी थी."

खान बहादुर साहब ने डर से चीखकर कहा, "ऐं! क्या कहा, नाग?"

हमने कहा, "जी हां, बिल्कुल काला नाग! होगा कोई दो-ढाई गज लंबा और फन उसका बिल्कुल तवे के बराबर होगा. सड़क के बीचोबीच कुंडली मारे फुंकार रहा था."

खान बहादुर करीब खिसक आये, "अच्छा-अच्छा! फिर क्या हुआ?"

हमने कहा, "साहब उसे देखकर एक बार ठंडा पसीना तो मुझे आ गया, मगर भागता हूं तो यह हमला कर देगा और खुद हमला करने को मेरे पास कोई चीज भी नहीं है..."

परवीन की खाला की लड़की ने कानों पर हाथ रखकर कहा, "हाय मेरे अल्लाह! ...फिर क्या हुआ?"

हमने कहा, "पहले तो कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करूं? उसकी दुम की ओर लपकना बेसूद था, इसलिए कि वह कुंडली मारे बैठा था."

खान बहादुर साहब बोले, "मेरा दम निकालने के लिए तो महज यह मंजर ही काफी था."

हमने हंसकर कहा, "जी हां, बहुत भयानक मंजर था. न तो किसी को मदद के लिए बुला सकता था और न भाग सकता था. न उस पर हमला कर सकता था. मैं उसकी आंखों से आंखें मिलाये खड़ा था और चुपके-चुपके अपना कोट उतार रहा था. आखिर कोट उतारकर उसकी ओर उछाला तो वह कोट से उलझकर अपनी कुंडली खोलकर जैसे ही मेरी ओर बढ़ा मैंने लपककर पकड़ी उसकी दुम और बड़ा झटका देता हूं तो तड़ाक से उसकी हड्डी टूट गयी. बस फिर क्या था. मैंने पत्थर मारकर उसका सिर कुचल डाला!"

खान बहादुर साहब ने इत्मीनान का सांस लिया जैसे वे सुनने के इंतजार में थे कि इस लड़ाई में हम मारे गये. परवीन ने यह सुनकर कहा, "वाकई यह तो बड़ी हैरत-अंगेज बात है."

हमने कहा, "साहब, उस नाग के मरने की खबर सुनकर कुर्ब-ओ जवार की बस्तियों के लोगों ने आकर मुझे घेर लिया और मुझे अपने कंधों पर उठाकर जुलूस की शक्ल में बस्ती में ले गये, क्योंकि उस नाग ने बस्ती के बहुत-से लोगों को मौत के घाट उतारा था."

हम अभी इतना ही कह पाये थे कि एक भारी भूचाल आ गया. कोई सोफे सहित उलट गया, कोई सोफे के ऊपर खड़ा हो गया. खान बहादुर साहब चीखने लगे, "वह निकला! वह रहा! जाने न पाये!" ...और मालूम यह हुआ कि वह जालिम सांप चोट खाकर उसी सोफे की निवाड़ में घुस गया था जिस पर बैठकर हम अपने कारनामों का बखान कर रहे थे.

सांप को देखते ही हमारा जिस्म कांपने लगा. हम उछलकर परवीन के पीछे आड़ में आ गये. पहले तो परवीन ने समझा कि हम दुम पकड़ने के लिए पैंतरा बदल रहे हैं, लेकिन जब हम उसकी आड़ में ही खड़े रहे और वह नाग रेंगता हुआ आगे बढ़ा तो वह चीखी, "वह रही दुम, दीजिए झटका!"

यहां तक दीगर लोगों की आवाजें हमारे कानों से धीमे-धीमे दूर होती गयीं, फिर हमें खबर नहीं कि क्या हुआ! जब होश में आया तो देखा खानबहादुर साहब का नौकर हमारे तलवे सहला रहा है और हमारे पैर बर्फ की तरह ठंडे हैं. उसी नौकर से मालूम हुआ कि सांप परवीन के हाथों मारा गया. और अब हमारी बेहोशी का जिक्र कर-करके सब हंस रहे थे.

हम अपनी बेहोशी का सबब बता न पाये थे कि खान बहादुर साहब आ गये, और तेजी-से बोले, "आ गया होश आपको! भाई, इस सांप ने तुम्हारी ही दुम को ऐसा झटका दिया कि कमाल ही हो गया. मैं तो यह समझा था कि सांप ने तुम्हें ही काट लिया है और जब डाक्टर ने आकर कहा कि डर के कारण बेहोश हो गये हैं तब इत्मीनान हुआ."

अब हम कहां तक चुप रहते, बड़ी मुश्किल-से कहा, "कुछ समझ में नहीं आता कि अचानक क्या हो गया था?"

परवीन की खाला की लड़की ने हंसकर कहा, "होना क्या था?... डर गये थे."

खैर, उस दिन जो हंसी हुई वह तकदीर में बदी थी, लेकिन परवीन की नजरों से वह नफरत फिर कभी न जा सकी जो उस वाकये के बाद पैदा हुई थी. यहां तक कि जब उसकी शादी एक मेजर साहब के साथ हुई तो उसने अपने शौहर से मेरा परिचय कराते हुए कहा, "आपसे मिलिए! आप हैं वक्त के सबसे बड़े तीसमार खां यानी सांप मार खां. □

■ **उर्दू से अनुवाद : एस. कुमार**

चलते-चलते

विश्व-विख्यात फोर्ड कार के निर्माता हेनरी फोर्ड से एक पत्रकार ने प्रश्न किया, "आपके सफल वैवाहिक-जीवन के पीछे क्या रहस्य है?"

हेनरी फोर्ड ने मुस्कराते हुए कहा, "जो रहस्य मेरी कार की सफलता के पीछे है, वही मेरे सफल दांपत्य-जीवन का भी रहस्य है... यानी हमेशा एक ही मॉडल से चिपके रहो." □

—कैलाश जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हुए लोग

बच्चों और पतिदेव के पुराने गर्म और सूती कपड़े निकले थे. कोई 'स्टील वाली' आ जाये तो बदले में एक खूबसूरत-सा नया कटोरा ले लें. और मिसेज श्रीवास्तव को दिखा दें कि वो किसी से कम नहीं हैं. वो बाहर निकलकर स्टील वाली को ढूंढने लगती हैं.

"बीबी जी. . .तेरे बच्चे जियें. . . कोई स्वेटर दे दे, बहुत ठंड है."

"चलो-चलो आगे बढ़ो. . .कहीं और से मांगो!"... पत्नी ने दुत्कारते हुए कहा. और अंदर आ गयी.

कुछ देर इधर-उधर हाथ पांव चलाती रही. सफाई करने की कोशिश में. . .अचानक उन्हें 'अस्टील वाली!' मधुर वचन सुनाई पड़ा. सफाई छोड़ सीधी बाहर की तरफ भागी. . ."जरा सुनना," आवाज देती हैं.

"आयी बीबी जी." स्टील वाली की आवाज से बोहनी हो जाने की खुशी झलकती है. . .

"क्या क्या बर्तन हैं? जरा दिखाना तो? स्टील का कटोरा है ढक्कन वाला, कितना बड़ा है? जरा खोल तो अपनी टोकरी!"

"ऐ लो, देखो, कितना सुंदर है? एकदम लेटेस्ट डिजाईन का है. ये देखो, उठाने के लिए लकड़ी के दो कुंडे भी लगे हैं."

कटोरा देखकर उसके मुंह में पानी भर आया था. मुंह बंद किये किये ही वे तेजी से संदूक में से कपड़े लेने भीतर चली गयीं.

"ये ले देख. . .पूरा बक्सा खोल देती हूं."

"अरे इनमें तो एक भी गरम कपड़ा नहीं है. इनकी तो एक कटोरी भी नहीं मिलेगी. . .कुछ गरम कपड़े भी तो दो. देखूं. . ."

"कपड़े तो और नहीं हैं. यही हैं, देख ले. . .देना हो तो दे दे वरना रहने दे," उन्होंने यह कह तो दिया मगर मन ही मन डर रही थीं कहीं वो सच-मुच उठकर चली न जाये.

एक बार फिर कपड़े गिनने और देखने का अभिनय होता है.

स्टील वाली भी समझ जाती है कि कि इन्हें लेना जरूर है. थोड़े नखरे करके ही गर्म कपड़े निकालेंगी.

"देख लो, लेना हो तो ले लो. स्टील का है स्टील का, कितना सुंदर है, नहीं लेना तो ठीक. पड़ोसवाली मेम साब को भी चाहिए. वो ले लेंगी."

ये सुनकर उनके तन बदन में आग लग जाती है. पड़ोस वाली मेम साब लेगी! गुस्से में भीतर जाती हैं और गर्म कपड़ों का पूरा गट्ठर उठा लाती हैं, "ले देख ले, जो जो लेना हो ले ले मगर कटोरा मुझे ही चाहिए!"

शाम हो चली थी. हवा में ठंडक बढ़ने लगी थी. सभी माएं अपने अपने बच्चों को बिस्तर में सुला चुकी थीं. वो अपने बच्चे को सीने से लगाये अपने फटे हुए आंचल में लपेट थककर फुटपाथ पर आ बैठी थी.

"कौन है?" शिथिल आवाज में वृद्ध भिखारी पूछता है?

"एक दुखियारी अभागन है बाबा जिसका न घर है न बाहर है." और बैठ जाती है दुसूति हटाकर.

"कोई नहीं है क्या?"

"नहीं, अकेली हूं. पति पिछले बरस भगवान को प्यारा हो गया था. ठंड लग गयी थी उसे. एक बच्चा है दो बरस का. उसे भी बुखार हो गया है. . ."

वृद्ध भिखारी का कलेजा पसीज जाता है, तुरंत अपनी दुसूती उतारकर बच्चे को ओढ़ा देता है. "पास में ही सरकारी दवाखाना है, मुफ्त दवा मिलती है वहां, वहीं ले जा. रात को भी पीछे बरामदे में सो जाना. चुपके से, नहीं तो चौकीदार निकाल बाहर करेगा."

"भगवान भला करे तुम्हारा बाबा." यह कहते हुए उठ जाती है. सीधे सरकारी दवाखाने की ओर चल पड़ती है.

"शीला, पढ़ा तुमने, कल राजधानी का सबसे ठंडा दिन था. इतनी सर्दी तो पिछले पच्चीस सालों में भी नहीं पड़ी थी. शीत लहर चलने से राजधानी में पचास व्यक्तियों की मौत हो गयी. अच्छा हुआ, मैं कल दफ्तर नहीं गया, वरना इक्यावन व्यक्तियों की मौत हो जाती. . ." हंसते हुए पतिदेव बोले.

"हैं. . .वो तो हर सर्दी में ही लोग मरते हैं. कोई क्या कर सकता है. सबका अपना-अपना वक्त होता है. अरे हां, श्रीवास्तव साहब से कहियेगा कि आज रात के भोजन पर जरूर आयें. आज शीत लहर नहीं चलेगी. . .मैंने कल कपड़े देकर एक नया कटोरा और राइस ट्रे खरीदी है. उन्हें जरूर बुलवाइयेगा. समझे. . ."

"अच्छा बाबा, अच्छा कह दूंगा. . ."

"अरे भीड़ क्यों लग रही है?" शर्मा साहब अपनी, पत्नी से पूछते हैं, "कोई मर गया क्या?"

"हां, एक बुड्ढ़ा मर गया. सर्दी लग गयी होगी शायद. तन पर एक पतली-सी धोती और बनियान थी. एन. डी. एम. सी. को फोन कर दिया है, वो लोग आकर लाश उठाकर ले जायेंगे. . ."

लाश के पास ही एक औरत और उसका दो बरस का बेटा बैठे थे. औरत के आंसू थम नहीं रहे थे. □

● **47 बाबर रोड, बंगाली मार्केट, नयी दिल्ली-110001**

▣ **शुभा सक्सेना**
▣ **जन्म : 25 अप्रैल, 1963.**
▣ **संप्रति : मैक्समूलर भवन से जर्मन भाषा का अध्ययन और स्वतंत्र लेखन**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कर दायित्वों को कम कीजिए

आयकर अधिनियम की धारा 80 सी के अन्तर्गत 10-वर्षीय संचयी सावधि जमा खाता और 15-वर्षीय लोक भविष्य निधि में पूंजी निवेश कर

संचयी सावधि जमा खाता	लोक भविष्य निधि
★ कम से कम 10 रु० प्रतिमास। अधिकतम 1,000 रु० प्रतिमास। 5 रु० के गुणकों में, एक या अधिक खातों में।	★ एक वर्ष में कम से कम 100 रु० और ज्यादा से ज्यादा 40,000 रु०। रकम एक-मुश्त या 12 किस्तों में जमा कराई जा सकती है।
★ संयुक्त खातों में दुगुनी राशि जमा कराई जा सकती है।	★ 9% वार्षिक कर रहित ब्याज (1983-84 के लिए)
★ 6.75% कर रहित ब्याज। 10 रु० के खाते में परिपक्व होने पर 1693.20 + बोनस हो जाते हैं।	★ खाता खोलने के एक वर्ष बाद ऋण लेने तथा 5 वर्ष बाद आंशिक धन निकालने की इजाजत है।
★ खाता खोलने के एक वर्ष बाद तथा पुनः 5 वर्ष बाद जमा राशि का 50% तक निकाला जा सकता है। अगर राशि नहीं निकाली जाती तो 10 रु० के खाते के परिपक्व होने पर 50 रु० का बोनस और इसी प्रकार अधिक मूल्य वर्ग में भी इसी दर से बोनस दिया जाएगा।	★ न्यायालय के आदेश अथवा डिग्री के प्रति सुरक्षा
★ 6 अथवा 12 महीनों की किस्तें अग्रिम जमा कराने पर छूट दी जाती है।	★ स्व-रोजगार व्यक्तियों के लिये आदर्श योजना
★ दफ्तरों में वेतन से बचत दल और घरों में महिला प्रधान एजेंट आपकी सेवा के लिए सहज सुलभ हैं।	★ निवेशित राशि-जिसमें आश्रित पत्नि तथा बच्चों के नाम राशि शामिल है-पर आयकर तथा सम्पत्ति कर से छूट मिलती है।
★ खाते सभी डाकघरों में खोले जा सकते हैं।	★ खाते सभी मुख्य डाकघरों, स्टेट बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों की अधिकृत शाखाओं में खोले जा सकते हैं।

राष्ट्रीय बचत संगठन
12, सेमिनरी हिल्स, नागपुर 440006

डि 83/437

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात की गाड़ी से पड़ोसी पटना जायें और अकेली रह गयी उसकी पत्नी की चिंता पड़ोसी न करें तो कौन करे? रात को लाइट जले और खुसुर-फुसुर सुनकर पड़ोसी के घर पराये मर्द का शक हो जाये तो. . . . पड़ोसी धर्म की व्याख्या करती हास्य रचना

पड़ोसियों का दर्द

सुरेश कांत

पहले पड़ोसियों को इस बात का दर्द था कि मुहल्ले में ये जो नये किरायेदार आये हैं—तिवारीजी, इनकी पत्नी बड़ी उच्छृंखल, बदतमीज और हद दर्जे की चरित्रहीन है. तिवारी जी के दोस्तों से हंस-हंसकर बातें करती रहती है. लाज-शर्म बेचकर खा गयी है बेहया. कुछ देर के लिए अपनी पड़ोसिनों के पास भी नहीं बैठती कि वे एक-दूसरे की चुगली उसके समक्ष करके अपना खाना ही पचा लिया करें.

मिसेज तिवारी के इस अभद्र व्यवहार से पड़ोसी और पड़ोसिनें इस हद तक पीड़ित थे कि उनकी हर बात मिसेज तिवारी के प्रसंग पर ही आ कर रुकती थी.

"महंगाई बहुत बढ़ गयी है."

"जी नहीं, महंगाई नहीं, गरीबी बढ़ गयी हैं."

"नहीं, महंगाई बढ़ गयी है!"

"नहीं-नहीं, गरीबी बढ़ गयी है."

"चलो, गरीबी ही सही, देश में कुछ तो है, जो बढ़ रहा है!"

"हां, अब आये तुम राह पर. देश में गरीबी ही बढ़ रही है. गरीबी न बढ़ रही होती तो तुम्हीं बताओ, मिसेज तिवारी अपनी लाज-शर्म क्यों बेच खाती, हूं?"

"क्यों बहन, काम खत्म हो गया?"

"अरी बहन, काम तो मरने पर ही खत्म हुआ करता है. अब बताओ, क्या मैं मर गयी हूं?"

"हाय, ऐसी अशुभ बातें क्यों निकालती हो मुंह से? मरें तुम्हारे दुश्मन! तुम मिसेज तिवारी की तरह चरित्रहीन थोड़े ही हो!"

"क्यों भई, क्या हाल हैं?"

"ठीक हैं."

"हे भगवान, आज यह कैसी बातें कर रहा है! कहता है, हाल ठीक हैं."

"क्यों, क्या हुआ?"

"यह पूछो कि क्या नहीं हुआ?"

"क्या नहीं हुआ?"

"अरे, इस महंगाई में भी किसी के हाल ठीक रह सकते हैं?"

"हां, रह सकते हैं."

"अच्छा चलो, मान लिया, पर क्या मिसेज तिवारी की बेहयाई देखकर भी किसी के हाल ठीक रह सकते हैं?"

"बहनजी, सुना आपने?"

"क्यों, क्या आप समझती हैं कि मैं बहरी हूं?"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था. अच्छा खैर, बताइए क्या सुना?"

"वही, जो आपने कहा."

"जो मैंने कहा, वह तो खैर आपने सुना ही होगा, पर जो मैं कहने जा रही हूं, वह भी आपने सुना कि नहीं?"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था. अच्छा खैर, बताइए आप क्या कहने जा रही हैं?"

"यही, कि सड़क पर आज एक दुर्घटना हो गयी है."

"अच्छा, तो क्या हुआ दुर्घटना में?"

"स्कूटरवाला मर गया."

"आपके पति भी तो दफ्तर स्कूटर पर ही जाते हैं!"

"और आपके भी!"

"हां, इसलिए चलो मंदिर चलें और प्रार्थना करें कि हे प्रभु, हमारे पति किसी से अपना स्कूटर टकराकर न मर जायें!"

"अजी नहीं, प्रार्थना करनी ही है तो यह करेंगी कि हे प्रभु, हमारे पति दुर्घटना में मर जायें तो कोई बात नहीं, पर मिसेज तिवारी के जाल में न फंसे!"

और पड़ोसियों तथा पड़ोसिनों की यह पीड़ा उस रात तो अपनी चरम सीमा पर ही जा पहुंची. हुआ यह कि आठ-सवा आठ बजे के करीब तिवारीजी अपनी पत्नी और पड़ोसियों से विदा होकर पटना चले गये थे, किसी काम से. घर में चूंकि मिसेज तिवारी अकेली रह गयीं थीं, अतः उनके घर की बत्ती दस-सवा-दस बजे ही बंद हो गयी.

पर अभी घंटा भर भी न बीता होगा कि मिसेज तिवारी के घर की बत्ती फिर जल उठी और फिर जली ही रही. उनकी पड़ोसिन यह-सब देख रही थी. उसे शक हो गया. वह फौरन पड़ोसिन नंबर दो के पास पहुंची और उसे सोते से जगाकर सारी बात बतायी. दोनों ने मिलकर अन्य पड़ोसिनों को भी जगा दिया.

"हाय राम, तिवारी साहब तो बेचारे बाहर गये हैं काम से, और यह बेहया यहां पराये मर्द के साथ गुलछर्रें उड़ा रही है!" पड़ोसिन

• सुरेश कांत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नंबर दो ने कहा.

"मुझे तो पहले ही शक था कि यह होगा." पहली पड़ोसिन ने अपनी बात दोहरायी." और आज जब मैंने बत्ती जलती देखी तो मेरा शक और भी पक्का हो गया."

"बेहयाई की हद होती है!"

"ऐसी भी क्या चरित्रहीनता!"

"कुलटा है जी, और क्या!"

"तुम ही कौन-सी कम हो!"

"क्या कहा?"

"अपने पति को कभी चैन से भी जीने देती हो तुम? हर वक्त तो लड़ाई झगड़ा, मार-पीट, गाली-गलौज करती रहती हो!"

"पर पतिव्रता तो हूं."

"देखी हैं ऐसी पतिव्रताएं!"

"ए बहन, जबान सम्हालो हां!"

"नहीं तो क्या कर लोगी तुम?"

"स्वेटर का फंदा गलत डाल दिया है री, तुमने!"

"मेरे मायके में तो ऐसा नहीं होता!"

"यानी इससे भी ज्यादा होता है?"

"तिवारी साहब सोच रहे होंगे कि मेरी पत्नी मेरे विरह से व्याकुल होगी और यहां ये हाल हैं कि. . ."

"पर तुम कैसे कहती हो कि मिसेज तिवारी के कमरे में कोई मर्द ही है?"

"और क्या इस समय उसके पास कोई औरत होगी?"

"पर कोई मर्द ही है, यह भी तुम कैसे कह सकती हो?"

"इस समय बत्ती जलने का और क्या मतलब हो सकता है री?"

"हो सकता है कि मिसेज तिवारी बत्ती बंद कर सोने गयी हों और नींद न आयी हो उन्हें, इसलिए पढ़ने-वढ़ने के लिए लाइट जला ली हो!"

"बच्ची हो अभी तुम!"

"हां, बच्ची हो अभी तुम!" पहली पड़ोसिन, जो इस बीच मिसेज तिवारी के घर की जासूसी कर आयी थी, बोली, "मैं अभी उसके कमरे से किसी मर्द की आवाज सुनकर आ रही हूं. दोनों हंस-हंसकर बातें कर रहे थे."

"हाय राम, कैसा जमाना आ गया है!"

"कलियुग है बहन, और क्या!"

"पर सुना है कि पापियों का संहार करने के लिए काली माता ने अवतार ले लिया है. . . अब पता चलेगा इसे!"

"ऐसों को ऐसे ही पता चलता है."

"कुलच्छिनी कहीं की!"

"क्या कहा?"

"मैं मिसेज तिवारी के बारे में बात कर रही हूं."

"तिवारी बेचारे के तो भाग्य ही फूट गये बहन!"

"तुम्हारे तो एक और होने वाला है शायद!"

"हां, पर अपने ही मर्द से है. तिवारिन की तरह थोड़े ही हूं कि. . ."

"मैं तो अपने उनको जगाती हूं."

"मैं भी."

"हम भी."

और सब पड़ोसिनों ने सब पड़ोसियों को जगाकर सारी बात बता दी. वे भी सब इकट्ठे हो गये और बातें करने लगे.

"आज कुछ होके रहेगा."

"हां, आज कुछ होके रहेगा!"

"यह भी कुछ बात है भला!"

सांप! आजकल तो तुम शहर में ही हो!

▣ प्रकाश पुरोहित

उस कांच के पिंजरे में वे सभी बंद थे. मैं उन्हें देख रहा था, उसे नहीं मालूम कि वे मुझे देख रहे थे या नहीं.

"हलो." मैंने कहा.

जो मेरे एकदम नजदीक था, उसने फन उठाकर मेरी तरफ देखा.

"हलो." उसने जवाब दिया. पहले प्रश्न का इतना बढ़िया रिस्पांस मिल जाये तो और प्रश्न करना प्रश्नकर्ता का दायित्व हो जाता है.

"आप करैत हैं?" मैंने उसके एकदम नजदीक होना चाहा. यही नियम हैं, जिसके नजदीक होना हो, उससे उसकी जात पूछ लो, जैसे, "क्या कान्यकुब्ज हैं?" उत्तरदाता अगर कान्यकुब्ज हुआ तो मस्तक गर्व से तानकर कहेगा, "और नहीं तो क्या. . . आप भी. . ." लेकिन उस सांप ने न तो मस्तक-रूपी फन उठाया, न पूंछ लहरायी. मैं समझ गया, यह करैत नहीं है.

"करैत. . . ये करैत क्या होता है?" उसने लेटे-लेटे पूछा. मुझे लगा, मैं गलत सांप के चक्कर में फंस गया हूं, अ-बुद्धिजीवी सांप के चक्कर में.

"भई, ये आप लोगों की एक जात होती है. कोबरा, वाइपर, करैत, रजत बंसी. . . जैसे हम मनुष्यों में ब्राह्मण, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई होते हैं." मैंने उसे समझाना चाहा.

"हां, आप लोगों की जात के बारे में तो सुनता रहता हूं, लेकिन हम लोगों में इस तरह की वर्ण व्यवस्था नहीं है. ये जो नाम गिनाये हैं ना आपने हमारे. . . ये भी मैं पहली बार सुन रहा हूं. सच बात तो यह है कि आप दूसरे व्यक्ति हैं, जिससे मैं बात कर रहा हूं." अब वह आसन यानी कुंडली मारकर बैठ गया था.

"इसके पहले आपने किससे बात की थी?" मेरे साथ शुरू से यही होता रहा है कि मैं कभी भी 'प्रथम पुरुष' नहीं बन पाया. इश्क के मामले में भी वह मुझसे सीनियर थी."

"नाम तो पता नहीं, पर वह एक कवि हैं!" उसने सोचते हुए कहा.

"आपने उनसे बात की थी और नाम तक नहीं पूछा?" मैं फिर प्रथम होने के आसपास ही था.

"नहीं बात क्या? उन्होंने एक प्रश्न पूछा था, जब तक मैं जवाब दूं, तब तक तो वे शहर की तरफ लौट पड़े थे."

वह अतीत में प्रवेश कर चुका था. मैं उसे वहीं रहने देना चाह रहा था. उससे मैं यह जानना चाह रहा था कि आखिर उस अगम्य व्यक्ति ने कौन-सा प्रश्न पूछा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कविता में उन्होंने मुझसे मेरे जहर का रहस्य पूछा था." कुछ कविनुमा व्यक्ति था वह! कविता में ही उसने मुझसे प्रश्न भी किया था, उसका आशय वही था कि सांप, उन कवि को लगा होगा कि मैं कांग्रेसी मुख्यमंत्री की तरह उनका प्रश्न सोचने के बहाने टाल रहा हूं. बस, वह व्यक्ति बेसब्र बनकर चल दिया. . .और मैं तब से वह जवाब मुंह में दबाये अटक रहा हूं. . . क्या आप पत्रकार हैं?" उसने चमकभरी नजरों से मेरी तरफ देखा. यह सामान्य नियम है कि प्रश्न पूछने वाला या तो पुलिस वाला होता है या पत्रकार, चूंकि मैं पुलिसवाला नहीं था, इसलिए पत्रकार तो था ही.

"तो मेरा वह बकाया स्टेटमेंट प्रेस में दे दोगे?" उसने पूछा. मैंने अपना फन... सॉरी सिर हिला दिया.

"मैं इन सभी सांपों में वरिष्ठ हूं. जिस तरह आप लोग हमसे डरते हैं, उसी तरह हम भी मनुष्यों से डरते हैं. चूंकि आपके पास सारा तंत्र है—आपके यह लिख कर दिया कि सांप काटने से आदमी को जहर चढ़ता है यानी सांप में जहर होता है. इधर हम लोगों का यह मानना है कि मनुष्यों को काटने से हमें जहर चढ़ता है. मनुष्यों में है, हममें नहीं."

"मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं. इस बात से उस व्यक्ति के प्रश्न का क्या संबंध है?" मैं समझ रहा था, वह केचुल छोड़ रहा है यानी पटरी से उतर रहा है.

"हां, मैं उसी बात पर आ रहा हूं. जैसे आजकल मनुष्य घोषणा कर रहे हैं ना कि सौ सांपों के बीच दो माह, डेढ़ माह. सौ सांपों के बीच चालीस दिन. मैं भी पहले इस तरह के 'शो' किया करता था. हमारी गिनस बुक में मेरा नाम है. आदमी के बाद की बात है यह. किसी प्रदेश की राजधानी में मैं 'शो' कर रहा था. मैंने घोषणा की थी कि 'पूरे मंत्रिमंडल के बीच एक सत्र' रहूंगा. इसके पहले मैं एक-एक मंत्री के यहां एक-एक माह रहने का रिकार्ड बना चुका था. हां, सो उस सत्र के दौरान मैंने देखा—आदमी, आदमी को काट रहा है. कुछ असंतुष्ट विधायकों ने मिलकर मुख्य-मंत्री को काट लिया. मुझे लगा मुख्यमंत्री कुछ पर हुआ और मैं बेहोश हो गया. कई दिनों बाद मेरी तंद्रा टूटी. मुंह कड़वा हो चुका था. मुंह जहर से भरा हुआ था. आज तक मेरे मुंह में उस जहर के अंश है. जिसे मुंह भी लगा दिया, वह सांस नहीं ले पाया.सुनते ही मैं बगैर उससे अभिवादन किये बाहर की तरफ भागा. लगा, मेरा पीछा कर रहा है. मैं और तेज कदमों से चलने लगा. वह और तेजी से मेरे पीछे-पीछे आने लगा. मैं घबरा गया. पीछे पलटकर देखा तो राहत की सांस ली—सांप नहीं था. हां, एक स्थानीय नेता तेजी से मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे. कभी हमारा भी इंटरव्यू ले लो यार!" □

● 125 नीलकंठ कालोनी, उमा निवास, इंदौर-452006 (मध्य प्रदेश)

"हां, यह भी कुछ बात है!"

"चरित्रहीनता की भी कुछ हद होती है."

"हमारी भी तो बहू-बेटियां हैं."

"और क्या!"

"हाय, औरतों का वह सीता-सावित्रीवाला चरित्र कहां गया?"

"पराये मर्द के साथ मुंह काला!"

"कहीं तुम्हें इस बात की तो पीड़ा नहीं कि उसने तुम्हारे साथ क्यों मुंह काला नहीं किया?"

"चुप, बे!"

"हां जी, चुप करो!"

"मैं कहता हूं, आज कुछ होके रहेगा."

"हां, आज कुछ होके रहेगा."

"नहीं चलेगा! . . ."

"नहीं चलेगा!"

"गड़बड़ घोटाला. . ."

"नहीं चलेगा."

"बोलो, भारत माता की. . ."

"जय!"

"इंकलाब. . ."

"जिंदाबाद!"

". . . आओ भाइयो, आज हम अपने मुहल्ले से यह गंदगी दूर करें."

"हां-हां, चलो!"

सब पड़ोसी तिवारीजी के घर के आगे आ खड़े हुए. अंदर से वाकई किसी पुरुष और स्त्री की धीमे-धीमे बातें करने और हंसने की मिली-जुली आवाजें आ रही थीं. एक पड़ोसी ने दरवाजे को खटखटाते हुए कहा, "तिवारी साहब घर पर हैं?" अंदर से बातें करने और हंसने की आवाजें आनी बंद हो गयीं.

"देखो, चुप हो गये."

"खटखटाओ, दुबारा खटखटाओ. . . जाने न पाये!"

पहला पड़ोसी फिर से खटखटाने और आवाज देने को ही था कि दरवाजा खुला और आवाज आयी, "कौन?"

"अरे, तिवारी साहब!"

"हां, क्यों? क्या हुआ?"

"आप पटना नहीं गये?"

"जा नहीं पाया, गाड़ी छूट गयी. पर बात क्या है? इतने आदमी. . ."

"कुछ नहीं, आप आराम कीजिए."

और पड़ोसी वापस लौट गये. मिसेज तिवारी की चरित्रहीनता का उनका दर्द तो अब खत्म हो गया, पर उसकी जगह एक दूसरे दर्द ने ले ली.

"धत् यार, तिवारी ही निकला."

"हां, तिवारी ही निकला."

"देखो तो सही, क्या जमाना आ गया है!"

"यह भी कुछ बात हुई भला!"

'मिसेज तिवारी से हमें यह आशा नहीं थी."

"हां, देखो तो सही, तिवारी ही निकला, पराया मर्द नहीं."

पड़ोसिनों को इस बात का पता चला तो उन्हें भी गहन पीड़ा ने दबोच लिया.

"अरी, तिवारी ही निकला!"

"हे भगवान, देखो तो सही, तिवारी ही निकला!"

"क्या जमाना आ गया है!"

"घोर कलियुग आ गया है बहन."

"कुलटा कहीं की!"

"हाय राम, पराया मर्द नहीं निकला!" □

● हिंदी अधिकारी, भारतीय रिजर्व बैंक, संसद मार्ग, नयी दिल्ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

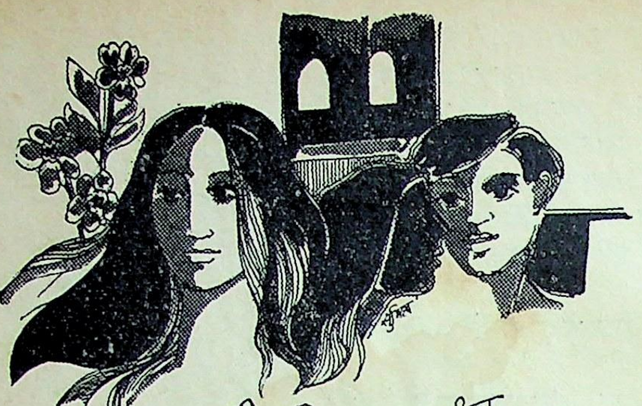

अंग्रेजी खाने का सुख

प्रदीप पंत

पहले वे मुझे लिफ्ट नहीं देते थे, अब देने लगे हैं.

पहले वे सोचते थे—छोड़ो, इसे क्या लिफ्ट देनी, यह हिंदी-लेखक है. लेकिन अब जब से मैं विदेश-पलट हुआ हूं, वे मुझे देखते ही आपस में फुसफुसाने लगते हैं, "हम पहले ही कहते थे, यह सख्श जीनियस है. इससे जरूर संपर्क बनाए रखो."

दरअसल, पास-पड़ोस के संपन्न व्यक्तियों और खाते-पीते रिश्तेदारों के बीच अब मैं 'आदरणीय' हो गया हूं. अब उनके यहां शादी-विवाह, मुंडन-जन्मदिन वगैरह होते हैं तो मेरे पास निमंत्रणपत्र जरूर आता है. भाभीजी मार्का औरतें लगभग मेरा हाथ खींचते हुए कहती हैं, "आपको डिनर लिये बिना जाने नहीं देंगे. . . हां."

हमारे देश में लंदन-पलट व्यक्ति को आदरणीय मानने की परंपरा पहले से ही रही है. और मैं तो लंदन क्या रोम, पेरिस, जिनेवा वगैरह की यात्रा भी कर आया हूं. इसलिए मैं कुछ ज्यादा ही आदरणीय हो गया हूं.

आदरणीय होने पर व्यक्ति गंभीर हो जाता है. अपने चेहरे पर एक और चेहरा लगा लेता है—खास तौर पर तब जब वह किसी समारोह में जाता है. बात-बात में और कभी-कभी तो बेबात घुमा-फिराकर विदेश-चर्चा करने लगता है. टेम्स नदी के किनारे या पेरिस के कला-संग्रहालयों के आगे खड़े होकर खिचाई हुई फोटुएं लोगों को दिखाता फिरता है. लोग कान लगाकर उसकी बातें सुनते हैं और ध्यान लगाकर फोटुएं देखते हैं. उसे गौर से निहारते हुए पता लगाने की कोशिश करते हैं कि उसमें क्या कुछ परिवर्तन आ गया है? जैसे 'इंपोर्टेड' चीजों को लोग लालच भरी नजरों से देखते हैं, वैसे ही 'विदेश-पलट' को वे ललचाई नजरों से. . .

मेरे साथ भी अब ऐसा ही होने लगा है. और मैं भरपूर कोशिश करता हूं कि शादी-विवाह में जाने पर दूसरा चेहरा जरूर साथ ले जाऊं.

पर कभी-कभी मैं या तो दूसरा चेहरा ले जाना भूल जाता हूं या नकाब की तरह पहने हुए दूसरे चेहरे के पीछे से मेरा असली चेहरा एकाएक झांकने लगता है, जैसे कई लोगों के 'केश-काला' लगाए हुए बालों के बीच-बीच से उनके सफेद बाल झांकने लगते हैं. ठीक ऐसे वक्त मैं हिंदी लेखक वाली ठेठ देहातीपन की हरकतें करने लगता हूं. मुझे निमंत्रित करने वाले सहसा दुखी हो जाते हैं. आपस में कानाफूसी करते हैं, "यह चाहे जितनी बार विदेश घूम आए, पर देहातीपन से बाज नहीं आएगा."

मुझे अफसोस भी होता है और हंसी भी आती है. अभी हाल में मैं एक विवाहोत्सव में गया. मोहल्ले के सबसे संपन्न व्यक्ति की मंझली लड़की की शादी थी. अन्य बेटे-बेटियों की शादी हुई तो उन्होंने मुझे नहीं बुलाया, क्योंकि तब तक मैं विदेश-पलट नहीं हुआ था. तब तक वे मुझे 'बेचारे हिंदी लेखक' के रूप में ही जानते थे. अपने एक नौकर के मार्फत एक बार उन्होंने मेरे पास संदेश भिजवाकर पूछा था कि क्या मैं 'सेहरा' लिख दूंगा? मैंने नौकर से जवाब कहला भेजा था, "मैं कविता नहीं कहानियां लिखा करता हूं."

उन्होंने अगली बार सत्यनारायण की कथा होने पर फिर उसी नौकर से संदेशा भिजवाया था, "आप सत्यनारायण-कथा का पाठ कर देंगे?"

मैंने गुस्से में नौकर से कहला भेजा था, "सेठजी को कहना मैं मौलिक कहानियां लिखता हूं, कथा-पाठ नहीं करता."

उन्होंने फिर कोई संदेशा नहीं भेजा. जानता हूं, उन्हें 'मौलिक' शब्द का अर्थ ही समझ में नहीं आया होगा, क्योंकि हमारे यहां लोग जैसे-जैसे संपन्न होते जाते हैं, वैसे-वैसे हिंदी भूलते जाते हैं.

बहरहाल अब इस बार मेरे 'विदेश-पलट' हो जाने के कारण उनके घर से मेरे लिए निमंत्रण पत्र ही आ गया. लिखा था—'आपको डिनर के लिए भी रुकना है.'

मैं निमंत्रण-पत्र पाकर शादी में तो गया, लेकिन दूसरा चेहरा ले जाना भूल गया. दूसरे चेहरे का खयाल रास्ते में आया. सोचा, अपने को गंभीर बनाए रखूंगा. बातचीत में शब्दों की भरसक कंजूसी बरतूंगा. उन लोगों ने आदरणीय मानकर मेरा वैसा ही स्वागत किया जैसा 'इंपोर्टेड' चीजों का किया जाता है. उनकी छोटी बेटी इठलाती हुई आयी और बोली, "अंकल, आपकी फॉरेन-ट्रिप कैसी रही?"

उसके 'अंकल' कहने पर मुझे लगा मैं न केवल आदरणीय हो गया हूं बल्कि बुजुर्ग भी हो चला हूं. मन ही मन गुस्सा आया, पर प्रकट में विरोध किए बिना कहा, "बहुत अच्छी."

"आप कौन-सा कलर टी. वी. और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वी. सी. आर. लाए?" वह तुरंत इंपोर्टेड पर उतर आई.

"कोई नहीं, बेटे!" मैंने वैराग्य की मुद्रा बनाते हुए कहा, "सब कुछ यहां मिल जाता है."

"नहीं, अंकल!" वह नाज-नखरे के साथ बोली, "इंपोर्टेड की बात ही और है." और वह मुझे इंपोर्टेड चीजों के महत्व के बारे में बताने लगी.

मैं सुनता रहा, पर मेरी नजर खाने-पीने की चीजों पर टिकी हुई थी.

मैं दरअसल शादी में कुछ देर से पहुंचा था. लोग खाने पर पिले पड़े थे. आजकल 'बुफे' का फैशन है जिसे मैं अक्सर 'काक-भोज' कहता हूं. लोग एक दूसरे को धकियाते हुए चीजों पर झपट रहे थे. जिसे प्लेट में जितनी ज्यादा चीजें रखने का मौका मिलता, वह उतना ही अधिक प्रसन्न और तृप्त नजर आता. ग्यारह या इक्कीस रुपये की सप्रेम भेंट देने की मजबूरी में अधिकांश लोग संपूर्ण परिवार के दलबल सहित आये हुए थे. बहुतों के चेहरों पर विजेताओंवाली मुस्कान थी. वे झटपट खाकर आइस्क्रीम की ओर लपकने के चक्कर में थे.

कलर टी. वी. और वी. सी. आर. पर मेरे उत्तर से निराश होकर मेजबान की छोटी बिटिया अपनी कुछ सहेलियों को 'सर्व' करने के लिए खिसक ली थी. मैं मौके की ताक में अकेला खड़ा था. तभी मेरी नजर पास खड़ी तीन महिलाओं पर पड़ी. चमकती हुई लाल, नीली, पीली साड़ियां पहने वे अपने होठों की लिपस्टिक बचाते हुए खाने में जुटी थीं. उनकी प्लेटों पर ढेर सारा खाना और उससे भी अधिक अंग्रेजी थी. वे चटखारे ले-लेकर खाना भी खा रही थीं और अंग्रेजी भी.

दरअसल शादी-विवाह जैसे अवसरों पर अंग्रेजी खाने का अपना सुख है. बड़ा रौब पड़ता है. मैंने सोचा, क्यों न मैं भी अंग्रेजी खाऊं. इसी बीच मेजबान की बिटिया अपनी सहेलियों से मुक्त होकर एक बार फिर मेरे पास आ खड़ी हुई और बोली, "अंकल, आप ऐसे चुप क्यों खड़े हैं! खाइये न कुछ!"

● प्रदीप पंत

दरअसल शादी-विवाह जैसे अवसरों पर अंग्रेजी खाने का अपना सुख है, बड़ा रौब पड़ता है . . . . मगर जब एक हिंदी लेखक ने खाने के साथ अंग्रेजी भी खाने की सोची तब उस पर ऐसी गुजरी कि न निगलते बने न उगलते . . .

मैंने कहा, "अभी भीड़ है."

उसने कहा, "भीड़ तो रहेगी ही. डोंट वरी, मैं आपके लिए ले आती हूं. बताइये, क्या-क्या लाऊं?"

मेरे भीतर का देहातीपन जाग उठा और मैं कह बैठा, "दो-एक पूड़ियां, दही-बड़े और ढेर सारी अंग्रेजी ले आओ."

वह भौंचक-सी मेरी ओर देखने लगी, मानो उसकी समझ में ही नहीं आया कि मैं क्या कह रहा हूं. पर मेरे बगल में खाने के साथ अंग्रेजी खाती हुई महिलाएं समझ गईं. उनमें से एक ने दूसरी से कहा, "सी, हाऊ मच बदतमीज ही इज! टाकिंग नॉन सैंस!"

"बट ही इज फॉरेन रिटर्न." दूसरी ने कनखियों से मेरी ओर देखते हुए कहा, जो मुझे जानती थी.

"ईविन देन ही इज एब्यूजिंग इंगलिश." तीसरी बोली.

मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या कहूं. वे दावत में अपनी प्लेटों पर पूरी-सब्जी वगैरह के साथ ढेर सारी अंग्रेजी भी रखे हुए थीं और बड़े आराम से उसे उल्टे-सीधे खाये जा रही थीं. वे खास तौर पर अंग्रेजी में परनिंदा का सुख लूट रही थीं. अंग्रेजी में परनिंदा का अपना ही आनंद होता है. आधुनिकता का अच्छा आवरण चढ़ जाता है. हिंदी में परनिंदा करो तो लोग कहते हैं, "अजब बेवकूफ है. हर वक्त दूसरों की आलोचना." लेकिन अंग्रेजी में परनिंदा करो तो लोग हां में हां मिलाते हैं. तो मैं उन्हीं की तरह प्लेट में अन्य चीजों के साथ अंग्रेजी खाना चाह रहा था तो उन्हें बत्तमीज नजर आने लगा. शायद मेरा कसूर यह था कि मैं हिंदी लेखक वाले देहातीपन पर उतर आया था. अब मैं उन्हें क्या समझाता कि यह केवल हमारा ही देश है जहां उठते-बैठते, ओढ़ते, हंसते-रोते, खाते-गाते कुछ लोगों का काम अंग्रेजी के बिना चल ही नहीं पाता. □

● संपादकः समाज कल्याण, जीवनदीप भवन, संसद मार्ग, नयी दिल्ली-1

चलते-चलते

अमरीकन स्कूल ऑफ जर्नलिज्म की एक छात्रा को किसी अखबार के दफ्तर में रिपोर्टर की नौकरी मिली. संपादक ने उसकी पहली ही रिपोर्ट स्वीकार कर ली. . साथ ही कुछ गल्तियों की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा, "इस बात को हमेशा याद रखो कि स्कूल ऑफ जर्नलिज्म के संपादक, जोजेफ पुलिट्जर ने कहा था कि अखबार के लिये सत्यता का उतना ही महत्व है, जितना स्त्रियों के लिये सच्चरित्रता का."

"आपकी यह बात भी पूरी तरह सत्य नहीं है महाशय," युवती ने हंसते हुए उत्तर दिया, "अखबार तो जब चाहे 'भूल सुधार' छाप सकता है." □

—मनजीत मुटरेजा, 'भवानी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय वैज्ञानिक फिल्म की अविस्मरणीय कहानी

▫ वीरेंद्र जैन

● छाया व कोलाज : जयनर

बहुत अर्से से हमारे फिल्मकारों पर यह तोहमत लगाई जाती रही है कि वे दादा फाल्के के जमाने से आज तक एक ही से विषयों पर फिल्में बनाते आ रहे हैं. इधर इस शर्मनाक आक्षेप को दरकिनार करने के लिए हमारे हिंदी फिल्मों के सुपर डायरेक्टर सरदेसाई ने सुपर स्टारों को लेकर सुपर स्टोरी पर एक सुपर फिल्म बनाई है जिसका विषय है भारतीय वैज्ञानिकों की चांद यात्रा. इस फिल्म को देखने का सौभाग्य मुझे मिला है, संभव है आपको न मिले, सो मैं आपके लाभार्थ उसकी कहानी सुना रहा हूं. —ले.

आज का दिन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा. आज ठीक बीस वर्ष बाद भारत का एक और यानी दूसरा वैज्ञानिक-अमित पृथ्वी से चंद्रमा पर जाने वाला है. अमित के पिता वे पहले वैज्ञानिक थे, जो आज से ठीक बीस वर्ष पहले चंद्रमा पर गये थे. उनके साथ उनका छोटा बेटा विनोद और एक आया भी गयी थी. लेकिन जब वे चंद्रमा से पृथ्वी पर आ रहे थे तो उनका चंद्रयान खराब हो जाने से दुर्घटनाग्रस्त हो गया था और यान में आग लग जाने से अमित के पिता की मृत्यु हो गई थी. मगर उसके छोटे भाई और आया की लाश काफी ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली थी.

पर अमित की मां ने हार नहीं मानी. उन्होंने अपने देवर अशोककुमार जो स्वयं वैज्ञानिक हैं, उनकी देखरेख में अपने इकलौते बेटे अमित को भी वैज्ञानिक बनाया ताकि वह अपने पिता के अधूरे काम को पूरा कर सके.

. . . आज अमित अपने मिशन पर जा रहा है.

उपरोक्त इबारत के बाद पर्दे पर पहला दृश्य आता है—

अमित चंद्रयात्रियों वाला लिबास पहनता है, फिर चंद्रयान के पास आता है. अचानक उसे कुछ खयाल आता है. वह वापस अपने वैज्ञानिक चाचा और मां के गले मिलता है. फिर अपनी प्रेमिका के कंधे पर हाथ रख उसे दूर एक झरने के पास ले जाता है. वहां दोनों में देर तक बातें होती हैं. प्रेमिका रो-रोकर कहती है कि वह उसके बिना कैसे रहेगी. जवाब में अमित उसे गोद में उठाकर झरने के नीचे ले जाता है. दोनों मिलकर एक डएक गाना गाते हैं. गाना गाते ही प्रेमिका को यह एहसास हो जाता है कि वह अमित के बिना कैसे रह पायेगी. तब दोनों वापस चंद्रयान के पास आते हैं. अमित चंद्रयान में बैठ जाता है. चंद्रयान बड़ी तेजी से ऊपर को उड़ता है और देखते ही देखते सबकी आंखों से ओझल हो जाता है.

चंद्रयान के अदृश्य होते ही अमित के चाचा, मां और प्रेमिका उसे चंद्रमा तक सकुशल पहुंचा देने की प्रार्थना करने के लिए पास ही के मंदिर में जाते हैं. वे तीनों वहां पहुंचकर भगवान की मूर्ति के आगे एक करुण गीत समवेत स्वर में गाने लगते हैं.

इधर जैसे ही अमित का चंद्रयान चंद्रमा की धरती पर उतरा कुछ लोगों ने उसे घेर लिया. और जैसे ही हंसता-मुस्कुराता अमित यान से बाहर आया उन लोगों ने उसे रस्सियों से बांध लिया. अमित समझ गया कि चूंकि चंद्रमा पर आदमी हल्का-फुल्का होकर उड़ने लगता है इसीलिए इन लोगों ने यह सावधानी बर्ती है. वे लोग उसे एक गुफानुमा अड्डे में ले गये. वहां जाकर उसे एक खंभे से बांधकर कतार में सिर झुकाकर खड़े हो गये. थोड़ी ही देर में एक युवक और युवती वहां आये. युवक ने अमित के पास आते ही उसके पेट पर एक घूंसा मारा. चूंकि अमित ने ऊपर से चंद्रयात्रियों वाला लबादा पहन रखा था इसलिए चोट उस युवक को ही लगी.

कुछ देर अपना हाथ सहलाकर वह युवक (विनोद खन्ना स्टाइल में) गुर्राया, "तो तुम पृथ्वी से आये हो हमारे गैंग का सफाया करने के लिए? पर तुम नहीं जानते हमारे हाथ कितने लंबे हैं. हमने तुम्हारा यान तोड़ दिया है और कल तुम्हारा भी कत्ल कर देंगे. अगर तुम जान की खैर चाहते हो तो वह डायरी हमारे हवाले कर दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें हमारे गैंग के लोगों के नाम पते लिखे हैं."

अमित ने ऊदबिलाव की तरह उनकी तरफ देखा और कुछ गमगीन-सा हो गया. तभी उस युवक ने अपने साथियों को वापस जाने का इशारा किया और खुद भी वापस जाते-जाते अपनी साथिन युवती से बोला, "परवीन डार्लिंग, तुम यहीं रुको और इससे सच्चाई उगलवाने की कोशिश करो."

उन सबके जाते ही अमित ने परवीन को बताया कि वह पुलिसवाला नहीं वैज्ञानिक है और अपने बाप का अधूरा सपना पूरा करने आया है. परवीन उस युवक की मंगेतर थी, वह अपने होने वाले पति को इन षड्यंत्रों से छुटकारा दिलाकर एक नेक इंसान बनाना चाहती थी. उसे डर लग रहा था कि उसका मंगेतर स्मगलर तो है ही कहीं अमित की हत्या करके हत्यारा भी न बन जाये इसलिए उसने अमित के सब बंधन काट दिये और वहां से भाग गयी.

मगर अमित वहीं खड़ा रहा. शाम को गेंग के तमाम लोग वहां वापस आये. उन लोगों को अपने बॉस की मंगेतर से अमित की कहानी मालूम हो चुकी थी. वे सब अमित का और अमित के बाप का मजाक उड़ाने लगे. अमित से अपने बाप की बेइज्जती बर्दाश्त नहीं हुई. वह उन पर टूट पड़ा.

तभी वह युवक वहां आ पहुंचा. उसने अमित पर गोली चलायी. अमित का लबादा टूटकर एक तरफ गिर गया. फिर उन दोनों में जमकर लड़ाई हुई. घूंसेबाजी, लाठीबाजी, तलवार-बाजी, कबड्डी, और फिर वे कभी कार में, कभी मोटर साईकल पर, कभी पानी के जहाज में, कभी हवाई जहाज में, कभी राकेट में, कभी ऐसे ही आसमान में उड़कर एक-दूसरे का पीछा करते रहे.

फिर वापस उसी अड्डे पर आ पहुंचे. वहां उस समय एक मुजरा हो रहा था. और पुलिस किसी को खोज रही थी. पुलिस को देखते ही उन दोनों में आंखों ही आंखों में कुछ बात हुई और दोनों लड़ाई छोड़, भेष बदल कर कव्वाली गाने लगे.

कव्वाली खत्म होते ही पुलिस वहां से चली गयी. तभी उस युवक ने एक एश-ट्रे में से पिस्तौल निकालकर अमित पर गोली चलायी. गोली लगते ही अमित की कमीज जलकर भस्म हो गयी. युवक ने जैसे ही दूसरी गोली चलायी अमित ने पीठ झुकाकर उसे नाकाम कर दिया. युवक ने जैसे ही तीसरी गोली चलाने के लिए निशाना साधा, एक बुढ़िया ने उसके हाथ पर झपट्टा मारा. हाथ हिलते ही गोली ऊपर छत पर लगे पंखे से टकरायी. पंखा नीचे गिरा. पंखे के गिरने से जमीन में गड्ढा हो गया. तभी उस बुढ़िया ने चीखकर कहा, "अमित दूर हट जाओ. विनोद गोली मत चलाओ. अमित तुम्हारा बड़ा भाई है."

अमित और उस युवक विनोद ने हैरानी से एक-दूसरे को देखा. फिर बुढ़िया की ओर देखा. तब बुढ़िया ने अमित की पीठ पर बना आर्य-भट्ट उपग्रह का निशान दिखाया. वैसा ही निशान विनोद की पीठ पर भी था.

इधर भगवान के आगे प्रार्थना करते-करते अमित की प्रेमिका ने देखा, वेदी के पास रखा दीया बुझना चाह रहा है. उसने वैज्ञानिक चाचा को दिखाया. वे समझ गये कि जरूर अमित पर कोई संकट आया है. वे तीनों मंदिर के बाहर रखे चंद्रयान पर सवार हुए और जा पहुंचे चंद्रमा पर.

जब वे वहां पहुंचे तो अमित और विनोद एक-दूसरे से गलबहियां कर रहे थे. अमित की मां ने अपनी बीस साल पुरानी आया को देखते ही पहचान लिया.

आया ने बताया, "जब मालिक मुझे और छोटे बाबू को यहां छोड़कर आप लोगों को लेने के लिए वापस पृथ्वी पर गये तो फिर नहीं आये. इधर हम मारे-मारे फिरने लगे. मैंने यहां एक साहिब के यहां काम करके विनोद बाबू को पाल-पोसकर बड़ा किया, पर जाने कैसे ये कुसंगत में पड़ गये. अब मालकिन अपनी अमानत आप संभालिए. मेरे लिए तो लगता है ऊपर वाले का बुलावा आ गया है." और यह कहते ही वह ढेर हो गयी.

यह देखकर वे सभी प्रसन्न हुए. बिछुड़े मां बेटे मिल गये. अमित ने विनोद को और विनोद ने अमित को अपनी होने वाली पत्नियों यानी वर्तमान प्रेमिकाओं से इंट्रोड्यूज कराया.

फिर ये सब मिलकर यह तय करने लगे कि उन्हें शादी के बाद यहीं मून लाइट में शेष जीवन जीना चाहिए या यहां हनीमून मनाकर वापस धरती पर लौट जाना चाहिए.

तो यह है सरदेसाई की नयी वैज्ञानिक फिल्म 'मून लाइट, मून लाइट' की अविस्मरणीय कहानी.

आप भी फिल्म जरूर देखें और फिल्म से पहले दिखाई जा रही डालडा सिंह-चिगचांग की कुश्ती और इंटरवल के बाद दिखाई जा रही ताकत के खजाने द्वारा नामर्दों को मर्द बनाने वाले नुस्खों की रीलें भी देखना न भूलें. □

● द्वारा : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली–110002

चुटकियां और चिकोटियां ▣ सुधा सेठ

कुशल पत्नी वह होती है जो प्रत्येक ऐसी बात मान लेती है, जिसे अपने पति से कराने का निश्चय वह पहले कर चुकी हो.

फिजूलखर्ची कोई ऐसी वस्तु खरीदने को कहते हैं जो आपकी पत्नी के काम की न हो.

सुखी दांपत्य जीवन के लिए एक सलाह—पत्नी के संबंध में जो विचार आपके मन में आयें, उन्हें अपने मन में ही रखिए.

यदि पत्नी बातूनी होगी, तो पति भगोड़ा होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओउम शांति

प्रेम जनमेजय

मोहल्ले की नींद अभी लगी ही थी कि 'बचाओ बचाओ' के नारे ने उसे खोल दिया. (वैसे नारे का काम जनता की सजगता को सुलाना होता है. जनता नारा लगाती है—भूख से पेट जल रहा है, नारा लगता है कि देश जल रहा है. भूख को सुला दिया जाता है.) मोहल्ला बॉलकानी में कौतुक देखने आ गया. सब फैंसी ड्रेस में थे, महिलाएं भी.

"क्या हुआ राधेलालजी?"

"क्या हुआ मेहरा साहब?"

"क्या हुआ आहूजा साहब?"

"की होया ओए. . . ?"

प्रश्न हवा में उछलने लगे. मोहल्ला सोच रहा था कि यदि कुछ दर्शनीय घटा हो तो देखने का कष्ट करें. चिल्लाने और बचाओ-बचाओ की आवाजें धीमे और तेज क्रम में जारी थीं, मोहल्ला शोध करने में व्यस्त हो गया.

"बीस नंबर में कुछ हुआ है. . ."

"कोई शायद चोर-वोर आया है."

"डाकू-वाकू हो सकता है. . . "

"चोर. . . ? उई मां" टांगें कांपती हैं. "क्या हुआ चौकीदार? क्या हुआ?" जिज्ञासा फूटती है.

"शाब, झगड़ा हो रहा है. कुछ शराबी नागर शाब को पीट रहे है." चौकीदार समाचार-पत्र बन जाता है.

"चोर-डाकू नहीं हैं. चलो-चलो, देखें. . .आओ मेहरा साहब. . .आहूजा साहब, राधेलालजी. . . चलो चलो देखें कि. . ."मोहल्ला निश्चित होकर कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसरित होता है. दर्शनीय स्थल देखने की मुद्रा में लोग बालकनी छोड़ मैदान में आते हैं. पत्नियां पुरुषों को समझाती हैं,

"...आप जरा दूर रहना... शराबियों का क्या भरोसा. . . मैं क्या, तुसीं ज्यादा कोल (समीप) न जानां. . . आपको बहुत जल्दी पड़ी है, पहले किसी को निकल तो जाने दो. . . सब्जी वाली छुरी ले जाओ. . ."

एक दूसरे की देखा-देखी लोग निकलकर मैदान में पहुंचते हैं, फिर बीस नंबर वाले नागर साहब के घर पहुंचते हैं. नागर साहब एक शराबी से गुथे हुए हैं. दूसरे को उनके नौकर ने पकड़ा हुआ है. लड़ाई-झगड़ा देखकर शांतिप्रिय मोहल्ला कुछ दूर पर ही रुक जाता है. संघर्ष की योजना बनाता है, कमेंट्री करता है.

"नागर साहब पिट रहे हैं. . ."

"पुलिस को फोन करना चाहिए. . ."

"मैं करता हूं. . . "

"मैं करता हूं. . ."

"मैं करता हूं. . . "

सात-आठ लोग फोन करने लपकते हैं. नागर साहब पिट रहे हैं.

"पुलिस क्या करेगी, हमें कुछ करना चाहिए." मोहल्ले का जवान खून बोलता है. इस बीच नागर साहब शराबी को जमीन पर गिरा लेते हैं. मोहल्ले में वीर रस का संचार होता है. "मारो-मारो. . . साले को . . . बहन. . ." सभ्य मोहल्ला सत्कर्म में जुटता है. ज्ञानीजन बहती गंगा में हाथ धोने लगते हैं. कुछ सज्जन मार शराबी को रहे हैं, परंतु टांगें स्वयं की कांप रही हैं.

"छोड़ो. . . छोड़ो. . ." मोहल्ले के हाथ रुकते हैं, "कानून अपने हाथ में मत लो. . . मर जायेगा ऐसे यह. . . छोड़ो, पुलिसवालों को फोन कर दिया है. . . इसे बांध लो. . . कानून हाथ में मत लो." मोहल्ले की बुजुर्ग पीढ़ी गांधीवादी राह दिखाती है.

मोहल्ला अधमरे शराबियों को पकड़े पुलिस की प्रतीक्षा करता है. इस प्रतीक्षा में कभी पुलिस की सतर्कता पर बहस होती है, कभी आधी रात हुई जानकर मोहल्ला ऊंघने लगता है. नींद खोलने के लिए बीच-बीच में दो-चार घूंसे-लातें शराबियों को जड़ने का क्रम जारी रहता है. इस प्रक्रिया में वह लोग ज्यादा लगे हुए हैं, जो सारी व्यवस्था का जायजा लेने के बाद आये हैं. वैसे भी पिटे हुए को पीटना हमारे देश की महान परंपरा है.

"खाली बोतल का हम क्या करेंगे. ऐविडेंस के लिए इसके पास शराब की बोतल तो मौजूद होनी ही चाहिए. जरा बढ़िया व्हिस्की लाइएगा.... साले पर चोरी का जुल्म भी लगा देंगे. ठोस सबूत इकट्ठे करने होते हैं न हमें!" पुलिस-प्रजातंत्र पर प्रहार करती व्यंग्य कथा——

पुलिस की फ्लाइंग स्क्वायड एक घंटे बाद आती है.

"कहां क्या हुआ है?" अबोध बालक के समान पुलिस पूछती है.

"वहां उधर."

"दिशा पाकर पुलिस वालों में उपस्थित धनीराम, रामसहाय को, रामसहाय खुशी सिंह को, खुशी सिंह माधव प्रसाद को और माधव प्रसाद छवी राम को चलने के लिए कहता है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब खड़े हैं.

"जल्दी चलिए, हमने शराबियों को पकड़कर बांधा हुआ है." सूचना प्रदान की जाती है.

"पकड़ा हुआ है. . ." पुलिस संतोष की सांस लेती है, सक्रिय होती है, "चलो, चलो!"

पुलिस को देखकर मोहल्ला छंटने लगता है. आहूजा साहब के घर किसी का फोन आता है, मेहरा साहब को लघुशंका व्याप्ती है, सूरी साहब का बच्चा रोने लगता है.

नागर साहब एक शराबी को पकड़े खड़े हैं. पुलिस पहुंचते ही क्रियाशील होती है, दो चार डंडे धर देती है.

"मर गया. . . मुझे क्यों मार रहे हैं. . ."नागर साहब चिल्लाते हैं.

"गुंडा शराबी तो यह है. . . इसे पकड़ो. . . हाय!"

"माफ करना जी. . . क्यों बे हरामजादे. . . शक्ल शरीफों की बना रखी है. . . बहरूपिए तेरे धोखे में हमने शरीफ आदमी को पीट दिया. . . साले बहन. . ."

पुलिस कानूनी कार्रवाई करती है, उसे अपने हाथ में लेती है. कानून सुरक्षित होता है.

"पुलिस इंक्वारी होती है."

"क्यों बे, शराब पीकर मारा-मारी करता है. . . शरीफ आदमी को पीटता है." सूंघते हुए, "क्यों बे, कौन-सी पी है."

"नहीं. . . साब. . . मैं. . . तो. . ."

"चुप साले. . . ठर्रा पिया लग रहा है. . . ह्विस्की पीने वाला दंगा नहीं करता है. . ."

"नहीं साब. . . मैं. . . साब. . ."

"चुप साले. . . इंक्वारी करने दे. . . क्यों नागरजी. . . शराब-वराब की बोतलें कहां हैं. . . "

"बोतलें क्या करेंगे?"

"मई एविडेंस इकट्ठे करेंगे कि नहीं. . . ऐसा करो, आपके पास बोतल होगी, आप दे दो. . . "

नागरजी थोड़ा हिचकिचा जाते हैं. अकेले ले जाकर अपनी विवशता प्रकट करते हैं, "मेरे पास कोई खाली बोतल नहीं है, कल ही मेरी वाइफ ने बेच दी हैं. . . आई एम सॉरी. . . इंस्पेक्टर साहब."

"आप तो समझदार होकर बच्चों-सी बातें करते हैं, नागर साहब. . . आपकी तो पुलिस में पहचान होगी, सब जानते हैं. खाली बोतलों का हम क्या करेंगे. . . ऐविडेंस के लिए इसके पास शराब की बोतल तो मौजूद होनी ही चाहिए. . . जरा बढ़िया ह्विस्की लाइएगा. . . साले पर चोरी का जुर्म भी लगा देंगे. ठोस सबूत इकट्ठे करने होते हैं न हमें. आप जरा बोतल का इंतजाम करो. . . जितनी ज्यादा से ज्यादा हो सके. मैं इस साले का इंतजाम करता हूं. इस साले की तो. . . हरामी. . . ठर्रा पीता है. . . शरीफ आदमी को मारता है."

"पर इसने देखिए मुझे मारा है. . . यहां . . . यहां. . . आरी से मारा है. . . गुप्ताजी को भी चोट लगी है. . . गुप्ताजी. . ." गुप्ताजी बच्चे और पत्नी को बुलाने में व्यस्त हैं.

"अरे नागरजी. . . आप क्यों चिंता करते हैं. .. हम पुलिसवाले किसलिए है. अच्छे नागरिकों की सहायता के लिए ही तो हम हैं. आप तो बोतल का इंतजाम करो." पुलिस-विभाग तसल्ली देता है.

नागर साहब बोतल का इंतजाम करने के लिए प्रयत्नशील हो जाते हैं.

शराबी रुपये-पैसे का इंतजाम करने की योजनाएं बनाने लगता है और इसके लिए सब-इंस्पेक्टर से एकांत में प्रेमालाप करता है.

पुलिस विभाग के सक्रिय-सिपाही भविष्य की खान-पान पार्टी की सुखद कल्पना में डूबते-उतराते हैं.

और मोहल्ला—एक महान सामाजिक कार्य करने के सुख को नींद के साथ भोगने लगता है, चारों और शांति है, ओउम् शांति! □

● 14-बी, पाकेटएल, त्रिवेणी (शेख सराय) नयी दिल्ली-110017

● व्यंग्यचित्र : रमाकांत निगम

चुंबन

महिलाओं की एक विचार गोष्ठी में 'चुबंन' पर चर्चा चल रही थी. तभी श्रीमती 'अ' ने 'ब' से पूछा, "क्यों बहन, चुंबन की व्याख्या क्या है?"

'ब' ने कहा, "चुंबन सामान्य नाम है. कारण, सब में कामन है."

यह सुनकर 'स बोलीं, "नहीं यह क्रियापद है. कारण, इसमें क्रिया होती है."

अंत में श्रीमती 'द' ने सबके विचार सुन चुंबन की व्याख्या की.

"चुंबन अवयव है. कारण, यह दो जनों को जोड़ती है."

—कमल सौगानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं और वे

• सुरेश उनियाल

वे अचानक मेरे सामने आकर खड़े हो गये थे. मैं कह नहीं सकता कि वे किधर से आये थे. दायें से या बायें से, आगे से या पीछे से, ऊपर से, या नीचे से. बस इतना भर ही मैं जान पाया कि एक क्षण पहले वे नहीं थे और एक क्षण बाद मेरे सामने थे.

उनकी शक्ल कुछ परिचित-सी लग रही थी पर याद नहीं आ रहा था कि मैंने उन्हें देखा कहां था. उनके चेहरे पर खिली तीन इंची मुस्कान के बीच से पान की लालिमा से रंगे, कत्थई दांतों की दो पंक्तियां झलक रही थीं. उनकी भरी-पूरी मूछें नगरपालिका के सफाई कर्मचारी के झाड़ू की तरह तनी हुई थीं. उनके आंखों के लाल-लाल गोले एक अजीब-सा आमंत्रण लिये थे. उनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और उन हाथों की बनावट को देखकर अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता था कि यदि उनके बीच में कोई गर्दन दबी हो तो उसकी हालत क्या होगी. उनके स्वच्छ धवल खादी के कुर्ते पाजामे पर न जाने किस साबुन या डिटरजेंट का प्रयोग किया गया था कि कहीं कोई दाग नजर नहीं आ रहा था हालांकि भ्रष्टाचार के काले और हिंसा के लाल दागों से उन्हें अटे पड़े होना चाहिए था.

वे अकेले नहीं थे. उनके साथ लोगों की लंबी कतार थी. अजीब बात यह है कि सभी की शक्लें एक जैसी थीं. सभी एक जैसी मुद्रा में खड़े थे.

"भाई सुरेश जी, आजकल कहां रहते हैं आप. इधर काफी समय से आपसे मुलाकात नहीं हुई." उन्होंने ऐसे कहा मानो पहले हम उनसे रोज ही मिलते रहते थे. यह सच है कि मैं उन्हें अभी तक पहचान नहीं पाया था पर साफ-साफ कहना कि मैं आपको पहचान नहीं पा रहा हूं, अपनी शामत को बुलाना था. नमस्ते की मुद्रा में जुड़े हाथों के गर्दन तक आते भला कितनी देर लगती है. ऐसी स्थिति में समझदार लोग जो करते हैं, मैंने भी वही किया.

मैंने भी प्रणाम की मुद्रा में दोनों हाथ जोड़े और लगभग क्षमा मांगते स्वर में कहा, "क्या बताऊं भाई साहब, (उनके साथ भाईचारा स्थापित करने के अलावा मेरे सामने और रास्ता भी नहीं था. अगर मुझे उनका नाम पता होता तो इस समय नाम से ही संबोधित करता) गृहस्थी के चक्कर में छुट्टी ही नहीं मिलती."

"ऐसे संकट के समय पर आपको मेरी याद भी नहीं आयी?" उनका स्वर मक्खन की तरह मुलायम और मिश्री की तरह मीठा हो आया था. मेरी समझ में नहीं आया कि वे किस संकट की बात कर रहे हैं.

वे आगे बोले, "लेकिन यह संकट आप पर ही नहीं पूरे देश पर आया हुआ है और इस संकट का मुकाबला हम सबको मिलकर करना है. . . "

मैं उनको रोकना चाहता था. मैं उन्हें बताना चाहता था कि मैं किसी संकट से नहीं घिरा हूं. घर का काम भी भला कोई संकट होता है. मसलन सब्जी ले आना, राशन या मिट्टी के तेल की लाइन में लगना, बच्चों को पढ़ाना. इस तरह के कामों से फुरसत मिले तो थोड़ी-सा सब्जी काट लेना या आटा गूंथना वगैरह-वगैरह (मेरा कोई दुश्मन आपसे कहे कि मैं बर्तन भी मांज लेता हूं तो हर्गिज यकीन न करिएगा. ऐसी बातें भला कोई चाहेगा कि और लोग भी जानें) तो कोई संकट की श्रेणी में नहीं आते.

लेकिन उनकी बात को काटकर कोई बात कहना मेरी हिम्मत के बाहर था. लिहाजा मैंने प्रत्युत्तर में गर्दन ऐसे कोण से हिलायी जिससे उन्हें लगे कि मैं उनकी बात पर हामी भर रहा हूं और मेरी आत्मा को लगे कि मैं किसी गलत बात को स्वीकार करने से इंकार कर रहा हूं.

"आज हालत यह हो गयी है कि किसी भी शरीफ आदमी का शराफत से जीना मुहाल हो गया है. . . " उनके मुख से अगला सूत्र-वाक्य टपका. उनकी कही हुई यह पहली बात थी जिस पर मैं अर्धस्वीकृति दे सकता था. मुझ जैसा शरीफ आदमी सचमुच हर जगह पिट रहा है. घर में बीवी की फटकार सुनता है, बस में कंडक्टर से लेकर ड्राइवर तक की तू-तड़ाक पर भी चुप्पी बनाये रखता है, ऑफिस में बॉस जो भी कहे, आंख,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान, नाक और मुंह बंदकर के झेलता है और कहीं अंधेरे रास्ते पर किसी कोने से निकलकर छुरा चमकाता हुआ कोई हाथ दिख जाये तो घड़ी, बटुआ वगरह चुपचाप उसके मांगने से पहले ही उस पर रख देता है. दूध-वाला अगर पानी को दूध और परचूनिया लीद को मसाला कहे तो सब कुछ देखने-समझने के बाद भी उसी की बात स्वीकार कर लेता है. मकान मालिक की एक ही धौंस पर किराया पचास रुपये बढ़ा देता है. राशन की या मिट्टी के तेल की लाइन में चार घंटे खड़े रहने के बाद जब दूकानदार राशन या तेल खत्म होने की घोषणा कर देता है तो, यह जानते हुए भी कि वह झूठ बोल रहा है, बचा हुआ राशन या तेल वह ब्लैक में बेचेगा, चुपचाप गर्दन लटकाये घर लौट आता है आदि, आदि.

उनके केवल एक ही शब्द पर मुझे आपत्ति थी. ये हालात 'आज' नहीं हुए हैं बल्कि मैं तो हमेशा से यही हालात देख रहा हूं. लेकिन यह मानकर कि 'आज' शब्द न उन्होंने कहा और न मैंने सुना, यह स्वीकार करने में मुझे कोई दिक्कत न हुई कि "आप बिल्कुल ठीक कहते हैं. सचमुच एक शरीफ आदमी का जीना मुहाल है."

"तो फिर आप इसके लिए क्या कर रहे हैं?" अचानक उन्होंने एक सवाल मेरे ऊपर फेंका. यह सवाल बिल्कुल अप्रत्याशित था.

"जी मैं. . . मैं. . . " मैं लगभग मिमियाने लगा था. उनके हाथ मेरी गर्दन की ओर लपकने लगे थे. मैं याद करने लगा कि जीवन की इन अंतिम घड़ियों में किसे याद किया जाये. पर वे गर्दन तक नहीं आये. केवल मेरे कंधों पर आकर टिक गये.

"आप ऐसा क्यों समझते हैं कि आप कुछ नहीं कर सकते? आप अपनी शक्ति से अपरिचित क्यों हैं?" उनके स्वर में मिश्री घुल गयी थी.

वे किस शक्ति की बात कर रहे थे?

"आप ठीक कहते हैं, वोट तो सिर्फ कागज का टुकड़ा होता है, पर आप सब वह वोट मुझे देंगे तो वह मेरे लिए आपकी शक्ति का प्रतीक होगा."—प्रस्तुत है नागरिक और नेता के संबंधों पर व्यंग्यात्मक दृष्टि

"त्रेता युग में हनुमान हुए थे. उन्हें जब कोई उनकी शक्ति की याद दिलाता तभी उनमें वह शक्ति आती थी. यहां तो पूरे हिंदुस्तान की जनता हनुमान हुई जा रही है. जब तक उन्हें यह न बताओ कि उसमें कितनी शक्ति है, उसे पता नहीं चलता. . ."

मैं अब भी नहीं समझा था कि वे किस शक्ति की बात कर रहे थे.

"अरे भाई वोट की शक्ति. आपका वोट क्या नहीं कर सकता. वह हालात को बदल सकता है, वह व्यवस्था को बदल सकता है, वह सरकार को बदल सकता है. . . "उनकी आवाज क्रमशः ऊंची होती चली गयी थी.

"लेकिन वोट तो सिर्फ कागज का टुकड़ा होता है. वह भला. . . "पहली बार मैंने उनकी बात काटने की कोशिश की थी.

"आप ठीक कहते हैं कि वोट तो सिर्फ कागज का टुकड़ा होता है, पर जब आप सब वह कागज का टुकड़ा, वह वोट मुझे देंगे तो वह मेरे लिए आप सबकी शक्ति का प्रतीक होगा. आगे की जिम्मेवारी मेरी."

उन्होंने अपनी बात पूरी की और मुस्कराये. मुझे लगा कि हालात को बदलने के लिए एक बार उनको वोट दे ही देना चाहिए. और मैंने वोट उन्हें दे दिया.

वे चुनाव जीत गये थे.

मैं खुश था कि अब सारी व्यवस्था ठीक हो जायेगी. अब कोई शरीफ आदमी नहीं सताया जायेगा.

अगले दिन मैं हर अन्याय के खिलाफ बोला. राशन वाले से, मिट्टी के तेल वाले से, परचून वाले से, बस के कंडक्टर और ड्राइवर से, हर उससे जिसे भी मैंने ज्यादती करते देखा, लड़ा (बीवी को छोड़कर) और सबसे पिटा.

पर मैं घबराया नहीं. मैं सीधा 'उनके' पास गया. वे अपने घर पर ही मिल गये. उन्होंने मुझे एक बड़े से कमरे में बिठाया. उस कमरे की दीवारों पर बहुत से दरवाजे थे. मैंने उन्हें बताया कि उनके जीतने के बावजूद किस तरह से अभी तक ये भ्रष्ट लोग गुंडागर्दी कर रहे हैं, शरीफ लोगों को तंग कर रहे हैं.

उन्होंने बड़े धैर्य से मेरी बात को सुना. फिर किसी को आवाज दी. उनकी आवाज सुनते ही उनके कमरे के हर दरवाजे से एक-एक आदमी निकलकर उनके पास आया. मैंने पहचाना, ये तो वही थे— राशनवाला, मिट्टी के तेलवाला, परचूनवाला, बस का कंडक्टर और ड्राइवर वगैरह. वे सब मेरी ओर घूर रहे थे.

मैं चकराया. ये लोग यहां कैसे आ गये.

उन्होंने उन सबको हुक्म दिया, "देखो, ये सुरेशजी अपने आदमी हैं. इन्हें कुछ लोग तंग कर रहे हैं. जरा जाकर उनकी खबर लो!" फिर मुझसे मुखातिब हुए, "इनको बता दीजिए, आपको कौन तंग कर रहा था. ये आपकी मदद करेंगे." वे सब मेरी ओर बढ़ने लगे.

मैं घिघियाया, "नहीं भाई साहब, मुझे किसी ने तंग नहीं किया. मैं तो यों ही मजाक कर रहा था." वे सब मेरे सर पर आ गये थे. मैं भागने के लिए रास्ता तलाश करने लगा.

'वे' हंसे, "हो हो हो.. . . यही तो मैं कहता था. जब तक मैं सत्ता में हूं, किसी भी शरीफ आदमी को परेशान नहीं किया जा सकता. . . हो. . . हो. . . हो. . . "हर ठहाके के साथ उनका मुंह फैलता जा रहा था.

अपने को बचाने के लिए मैं उनके मुंह में कूद गया. उसके बाद वे मुझे निगल गये. □

● 421 एफ, मयूर विहार, दिल्ली-91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलकाज़ी की दुनिया जुम्मन का पाजामा नटी के सवाल ...

"मिस्टर अलकाजी इज ड्राप लेटर इन थिएटर डिस्कशन." और बात जहां से शुरू होती है वहीं पर आकर खत्म हो जाती है. लेकिन लब्बो-लुबाब यही निकलता है, 'पाजामे मे पर कोई चरचा नहीं.' अब कहेंगे बात थिएटर की हो रही थी यह पाजामा कहां से आ गया. तो 'नटी' एक कहानी सुनाती है आइए, हम भी उसे सुन लें. . .गो कि यह होली का मौका है!"

बहुत पुरानी बात है. एक देश में जुम्मन नाम का एक जुलाहा रहा करता था. वह बहुत गरीब था इसलिए उसकी शादी नहीं हो रही थी. सो, हुआ यह कि पूरे गांव के लोगों ने मिलकर तय किया कि जुम्मन के लिए औरत ढूंढी जाये और शादी करायी जाये. तो साहेब का बेटा जियें, मामला तय हो गया. लड़की खोजी गयी और दिन-बार तय हो गया. लेकिन समस्या जे आन पड़ी कि जुम्मन को दूल्हा कैसे बनाया जाये! होते-होते जे हुआ कि किसी ने अपनी अचकन दी, किसी ने जूता, किसी ने टोपी तो किसी ने पाजामा और. . .आखिरकार जुम्मन शादी वास्ते निकल पड़े. शहनाई बजती रही. बारात चलती रही. और पूरे शान-शौकत के साथ जुम्मन मियां लड़की वाले गांव की तरफ कूच कर गये.

बीच में जहां भी बारात रुकती, लोग जुम्मन मियां को घेरकर खड़े हो जाते.

सब पूछते, "जनाब, ए कौन हैं जिनकी शादी हो रही है?" तो एक सज्जन उठकर खड़े होते और जुम्मन मियां की पूरी बात बताते और आखिर में यह कहते कि "लेकिन यह इन्होंने जो पाजामा पहना है वह मेरा है."

"यह बात जुम्मन मियां को अखर गयी. और उन्होंने अकेले में ले जाकर यह हिदायत दी कि "सब ठीक है लेकिन यह पाजामे के बारे में ऐसा क्यों कहते हैं कि यह आपका है."

वह सज्जन जिन का पाजामा था रहमदिल थे. यह मान गये. और नतीजा ये हुआ कि उनसे अगले पड़ाव पर जब लोगों ने पूछा कि "यह कौन हैं? कहां जा रहे हैं?" वगैरह वगैरह तो उन्हीं सज्जन ने फिर पूरा परिचय दिया और आखिर में यह कहा कि "लेकिन यह पाजामा मेरा नहीं है."

यह बात भी जुम्मन मियां को नागवार गुजरी और उन्होंने फिर समझाया कि "सब तो ठीक है लेकिन पाजामे का जिक्र क्यों करते हैं." और वे सज्जन यह मान गये कि अब पाजामे का कोई जिक्र नहीं करूंगा.

सो साहब बारात लड़कीवालों के यहां पहुंच ही गयी. लेकिन शादी के एन मौके पर किसी ने पूछ ही लिया कि "साहब! जरा जुम्मन मियां के बारे में कुछ बता दीजिए." बस, इतना सुनना ही था कि वही सज्जन फिर खड़े हुए और बोलते भये, "ये जुम्मन मियां हैं-फलां गांव के हैं, फलाने साहब के साहब-जादे हैं," वगैरह-वगैरह करते-करते आखीर में बोले कि. . ."लेकिन मैं पाजामे के बारे में कोई जिक्र नहीं करूंगा!"

इतना सुनना भर था कि जुम्मन मियां का चेहरा गुस्से से लाल हो गया और तुरंत खड़े हुए और अचकन को निकालकर एक तरफ फेंका, जूते को दूसरी तरफ, टोपी कहीं गयी और पाजामा. . .

मैंने कहा बस. लेकिन नटी कब चुप होने वाली थी! उसने ऐसी की तैसी कर ही डाली. तो साहब यह है. . .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगमंच यानी जुम्मन का पाजामा. किसी से भी बात करिये. बस लब्बो लुबाब यही रहता है. "अलकाज़ी एक परंपरा की शुरुआत है." "अलकाज़ी परंपरा की शुरुआत नहीं है." "अलकाज़ी पर कोई चरचा नहीं." जो कुछ भी हो जुम्मन शादी करें या न करें, लेकिन बारात तो है ही. वापसी की हो यो रवानगी की.

पिछले अंक में नटी ने अनीला से बतियाकर जो कुछ कहना कहलाना था निकलवा लिया. सूत्रधार खाने की प्लेट ठीक कर रहा था. इस बार भी नटी को ही आना था. साथ में उत्तरा बावकर, नूतन, डाली, हेमा, सीमा भार्गव प्रतिभा काजमी किसी न किसी को तो आना ही था लेकिन सूत्रधार आ गया. क्यों? वह आगे बताऊंगा. नटी होली के मूड में है. देवरों की गत बिगाड़ रही है. सूत्रधार को मौका मिल गया. आ गया. हाथ में रंग है, गुलाल है पिचकारी है, फूलों का थाल है. सब पर गिरेगा. किसी को इससे भी चुभन हो तो सूत्रधार का क्या दोष! यह तो फेंकेगा ही.

सूत्रधार भागकर नटी के पास पहुंचता है. नटी रंगमंच के बारे में पूछती है वही जस का तस यहां है. केवल सवाल जवाब (जगह की कमी की वजह से)

क्या हो रहा है रंगमंच में?

सोहर गाया जा रहा है?

काहे का?

भारतीय करज का.

कहां हो रहा है साधेर?

दिल्ली, कलकत्ता, बंबई, बनारस, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, भोपाल!

दिल्ली में क्या हो रहा है?

राजा राज कर रहा है, परजा चैन से सो रही है.

जैसे **बी. एम. साह**—बहावलपुर के एक अंधेरे कमरे में बैठे कांग्रेस के बीस सूत्रीय कार्यक्रम की लाइनें याद कर रहे हैं. क्योंकि इनके बाप-दादा भी यही करते थे. **मनोहर भाई,** मेजर रोल इज मस्ट फार मी. **सुरेखा?** सवाल अगले कदम का है! **बागीश?**—रैना बिताई कोहि धाम! **अनंग?** नत्थू स्वीट्स. **वासुदेव?** कहानी फिर कभी. **उत्तरा?** मैना गुरजरी. **अनीला?** किसने कहा कि मैंने मनोहर भाई को गरिआया है? **दीपक केजरीवाल** स्साला सूत्रधार बदमाश है. **एस. के रैना?** जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ. **अंजली रैना?** आपरेशन इज सक्सेस फुल. **वेद धींगड़ा?** मल्टी परपज. **सीमा भार्गव?** आषाढ़ का एक दिन. **बी. यल. चोपड़ा?** सादिकभाई. **सतीश सहगल?** सच्चाई उघारो फिर देखो. **ज्ञान शिवपुरी?** चले थे हरिभजन को ओटन लगे कपास. **अंकुर?** संभावना नहीं, संभव. **कलकत्ता. . .**उत्पलदत्त कहां-कहां से गुजर गये! **शंभू मित्रा** चरित्र की खोज. **बादल सरकार?** पगला घोड़ा. **अनामिका**-अंतरंगता. **बंबई?** सथ्यू. बकरी दूध देती है! **नादिरा बब्बर?** टक्कर. **राज बब्बर** भजपा अपना भी है. **रोहणी** सैंया भये कोतवाल. **श्री रामलागू** हिंदी फिल्म, मराठी दुनिया. □

क्या हो रहा है रंगमंच में?—रंगमंच के लोगों का सवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ हरिशंकर परसाई के रचना संसार का संपूर्ण आकलन

आखिर कौन तय करेगा कि कहानी क्या है और क्या नहीं है? कहानी और कविता या किसी भी विधा के अपने सांचे, शास्त्र बनाता है लेकिन कोई-एक कबीर, कोई-एक निराला, कोई-एक मुक्तिबोध और कोई-एक परसाई आकर उन सारे सांचों को छिन्न-भिन्न कर एक किनारे रख देता है और आलोचना के सारे प्रचलित और मौजूदा प्रतिमान नाकाफी, बल्कि फालतू हो जाते हैं और आपको नये सिरे से फिर एक रचना-शास्त्र की, जरूरत होती महसूस होती है.

सवाल तो एक हलके में यह भी किया गया कि आखिर परसाई का अवदान क्या है? उन्हें किस रचना के लिए आज से दस-बीस या पचास बरस बाद याद किया जा सकेगा?... अपनी सारी ईमानदारी के बावजूद यह सवाल क्या उतना ही मासूम है? क्या साहित्य, विश्व-साहित्य में ऐसे रचनाकार भी नहीं हुए हैं जिन्हें किसी रचना विशेष के लिए नहीं बल्कि उस समग्र लेखन के लिए याद किया जाता रहेगा, जिससे साहित्य की मौजूदा संस्कृति में एक क्रांति आयी और एक नयी संस्कृति की रचना हुई? परसाई की इन कहानियों ने भी कहानी के संस्कार, रुचि और संस्कृति को बदला है. भारतीय और विश्व कहानी की समृद्ध परंपरा की सार्थक निरंतरता कायम रखते हुए उसमें नयी और प्रासंगिक कड़ियां जोड़ी हैं.

▣

परसाई कहते हैं, **"जो अपने युग के प्रति ईमानदार नहीं होता, वह अनंत-काल के प्रति कैसे हो लेता है, मेरी समझ से परे है"**...अपने युग के प्रति ईमानदारी से ही परसाई की कहानियों ने वह कालजयी सार्थकता पायी है जो ऐन हमारी नजरों के सामने चरितार्थ हो रही है. परिवेश से यह तात्कालिक संपृक्ति, कहानी की ऐसी खासियत है

परसाई की कहानियां : समकालीन हिंदुस्तान का कैलिडोस्कोप

▣ धनंजय वर्मा

जो उसकी आदिम स्थिति से लेकर आज तक बरकरार है और उसे मानव-जय-यात्रा की सामूहिक स्मृतियों की वाहक बनाती है.

बात हम अपने देश और समाज की करें.

सत्ता के हस्तांतरण के रूप में पायी गयी राजनीतिक आजादी और उसके बाद तीन-चार दशकों में भी मौजूदा पूंजीवादी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में शोषण और दमन की शिकार भारतीय जनता आज भी अपनी मुक्ति के संघर्ष में लगी हुई है. इस परिवेश में दो पीढ़ियों के संक्रांतिकालीन एहसास और चेतना की सक्रियता है. एक पीढ़ी वो है जिसने आजादी के लिए कुर्बानियां दीं, जिसके अपने कुछ नैतिक आदर्श थे और सामने था एक सुनहरा भविष्य. आशाएं-आकांक्षाएं थीं, सपने थे उसके, लेकिन आजादी मिलते ही शरणार्थियों के काफिले, सांप्रदायिक दंगे, खून-खराबा, विदेशी पूंजीपति की जगह देसी पूंजीपति, गोरी नौकरशाही की जगह काली नौकरशाही और सबके नतीजतन एक व्यापक स्वप्न भंग, मोहभंग, हैरानी और उदासीनता और राजनीतिक अवसरवादिता का माहौल...! और फिर एक ऐसी पीढ़ी है जिसे न कोई स्वप्न देखने का मौका मिला और न कोई मोह पालने की फुरसत. आंख खोलते ही उसे भ्रष्टाचार, आपाधापी, ले-लपक, विभीषिकाएं, यंत्रणाएं, विसंगतियां और निरर्थकताएं देखने को मिलीं. गरीबी, भुखमरी, अकाल और दमन के बीच पिसती हुई और हड़ताल और आंदोलनों के जरिये अपना प्रतिरोध जताती हुई भारतीय जनता अवसर-वादी नेताओं के झूठे वायदों और नारों और दल बदल-बदलकर सत्ता से चिपकने या उसे हथियाने की बेगैरत कोशिशों के बीच लुटी हुई है. चुनांचे एक ओर पस्तहिम्मती है, बदहवासी है, खीझ और छटपटाहट है और दूसरी ओर गुस्सा है, आवेश और आक्रामकता है, आक्रोश और विद्रोह है. भ्रमभंग और दिग्भ्रांति के दोनों छोरों के बीच तना हुआ परिवेश ही परसाई की कहानियों का संदर्भ है.

लेकिन यही परिवेश तो सन पचास के आसपास शुरू हुई नयी कहानी और नये कहानीकारों का भी था, है. फिर अंतर की रेखाएं कहां हैं?...यह अंतर है—परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया के स्वभाव और रचना-चेष्टा का. बेशक सन पचास के आसपास हिंदी कहानी में जो नया उभार आया वह खासा अहम था कि कहानी सारी साहित्य चर्चा के केंद्र में आ गयी, लेकिन उस नयी कहानी के भी अपने अंतर्विरोध थे जो जल्द ही उभरकर सामने आ गये. जब अधिकांश नये कहानीकार मध्य-वर्गीय कुंठाओं के दायरे में सरगोशियां कर रहे थे, बूढ़े मां-बाप से विद्रोह और अतीत-मोह के सायों से लगभग आक्रांत थे. प्रणय और परिणय की ग्रंथियों में उलझे या तो टूटे पुरुष और बिखरी नारी के आंसू समेट रहे थे या फिर संवेदनहीनता की खोल में दुबके अनुभूतिवाद के नाम से एक नये रहस्यवाद की शरण चले गये थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब भोगे हुए यथार्थ और अनुभव की प्रामाणिकता के नारे पर उनमें अकेलेपन और अजनबीयत, संत्रास और मृत्यु-बोध का जाप हो रहा था तब परसाई ने अपने चौतरफा समाज की बनत और रंगत, तात्कालिक राजनीतिक साजिशों, प्रशासन की अमानवीयता और धर्म और आध्यात्म के पाखंडों से छले जाते समकालीन आदमी की रोज़-मर्रा तकलीफ को जुबान दी.

इसीलिए उनकी कहानियों का भावबोध भी अलहदा है. वह ऐसा आधुनिकवादी भावबोध नहीं है जिसमें मनुष्य का या तो पाशविक बिंब उभरता है या यांत्रिक, न तो वह आत्मनिर्वासन भोगता हुआ शाश्वत निरर्थकता का शिकार है, न अंतर्गुहा-वासी और आत्मलीन है. अस्तित्ववादी विसंगतिबोध के बरअक्स इनका भावबोध आधुनिकता की अनिवार्य प्रक्रिया से रूपायित है. आधुनिक भावबोध को संकटबोध और संक्रांति-बोध भी कहा गया है, लेकिन इस संकट और संक्रांति के प्रति लेखक के दृष्टिकोणों और वृत्तियों में खासा अंतर रहा है. आधुनिक जीवन के संकट, उसकी विसंगति, अंतर्विरोध और विघटन की स्थितियों के बीच एक रवैया तो उस निस्सहाय नकारात्मकता का रहा है जिसमें मासूम ईमानदारी तो रही है लेकिन वह निष्क्रिय रही है और दूसरी ओर एक ऐसी सक्रियता रही है जो खासी चालाकी और मक्कारी से भरी है. परसाई अपनी कहानियों में दोनों का स्वांग खोलते हैं. अपने चौतरफा राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ की अंतर्निहित प्रक्रिया के सघन और रचनात्मक रूपांतरण से उनकी कहानियों का भावबोध निर्मित हुआ है. इसीलिए न तो उसमें सब कुछ पतित है, चारों ओर भ्रष्टाचार है, सभी चोर हैं वाली मसीहाई मुद्रा है और न वह निरावेग और ठंडा रवैया जो सब कुछ को मानवीय नियति मानकर अपने अंधेरे बंद कमरों में आत्मालाप करता हुआ तथाकथित शाश्वत साहित्य रचने का दंभ करता है. उनकी कहानियों के भावबोध में भावुकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है. उनका यथार्थबोध ब्रेख्त की याद दिलाता है जो अपने चरित्रों, स्थितियों और प्रसंगों के प्रति दर्शक की भावुकता को बड़ी बेरहमी से भंग करते हैं और उसके बौद्धिक और नैतिक विवेक को उत्तेजित करते हैं. परसाई न तो अपने प्रति भावुक हैं और न अपने सिरजे गये चरित्रों के प्रति. परसाई ने लेखन को एक सामाजिक कर्म के रूप में स्वीकार किया है इसलिए सामाजिक शक्तियों की अंतर्क्रिया, द्वंद्व और संघर्ष की उनकी समझ से ही उनका भावबोध रूपायित हुआ है. वह आलोचनात्मक यथार्थवाद की सक्रियता से समृद्ध है.

परिवेश और भावबोध की अंतर्क्रिया से जो अनुभव-संसार उनकी कहानियों में से उभरता है, उसमें व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक अनुभव का द्वित्व और द्वैत नहीं है. वहां तो परिवेश की संश्लिष्ट विविधि रूपात्मक, सघन और तीव्र अनुभूतियां ही अपनी अभिव्यक्ति पाती हैं. इन कहानियों का अनुभव संसार उन सामाजिक अंतःसंबंधों की पूरी बनत खोलता है जो समकालीनता की ऐतिहासिक दृष्टि से पड़ताल करने पर ही समझी जा सकती हैं. अनुभव की ईमानदारी और प्रामाणिकता की परस्पर क्रिया से इनका अनुभव संसार वैयक्तिक सघनता और सामाजिक व्यापकता को एक ही साथ अर्जित करता है. उसमें व्यक्तिगत दुखों और पीड़ाओं का आत्मालाप नहीं है, बल्कि उसके दंश और खलिश से बाहर अपने ही अनुभवों को एक दूसरी निगाह से देखने की कलात्मक दूरी अर्जित कर ली गयी है, इसीलिए स्वानुभववादी या स्वानुभूतिवादी संकुचित दायरे में कैद निजी मामलों की कहानियों से अलग उनकी कहानियों का एक सामाजिक संदर्भ, प्रसंग और असर है. वहां निजी अनुभव भी एक वृहत्तर सामाजिक यथार्थ और प्रक्रिया का अंग बन गये हैं. इसकी वजह यह भी है कि वे अनुभव का महज बयान नहीं करतीं बल्कि उस अनुभव का विश्लेषण करती उसके अर्थ-संकेत खोलती हैं, उसके तार्किक निष्कर्ष उद्घाटित करती हैं और वह अनुभव एक पूरी रचनात्मक और सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि और प्रतीक बन जाता है. मामूली से मामूली आदमी का दुख, दर्द, मध्य-वर्गीय चरित्र की विसंगतियां, निम्न-मध्यवर्गीय मजबूरियों से ही यह अनुभव संसार रूपायित हुआ है. परसाई का कहानीकार सामाजिक अनुभवों का केवल दर्शक या गवाह नहीं है, वह उनमें भागीदार और उनका भोक्ता भी है.

परिवेश, चेतना और भावबोध, अनुभव-संसार और रचनादृष्टि की अभिव्यक्ति का सबसे प्रामाणिक और रचनात्मक माध्यम मानव-बिंबों का वह विन्यास है, जिसकी रचना की जाती है. रचनाओं में लेखक के अनुभव के रूपांतरण की मानवीय शक्लों से ही उसकी परिवेश चेतना और मूल्यबोध की सार्थकता सिद्ध होती है. इस बात में तो खर शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि रचना का केंद्र वह मानवीय परिकल्पना है जो रचनाओं में से रूपायित होती है. मानवबिंबों के मूर्त रूप होते हैं व्यक्तित्व के वे प्रतिरूप जिनके माध्यम से मानवीय मूल्य संचरित होते हैं. बाहर की दुनिया और जिंदगी से व्यक्ति की सघन अंतक्रिया से जो अनुभव जन्म लेते हैं वही मानवबिंबों में रूपायित होते हैं और व्यक्ति चरित्र के रूप में ढलकर लेखक की अनुभव-समृद्धि और विविधता के प्रतीक और प्रतिनिधि हो जाते हैं. कहानियों से उभरनेवाली ये मानवीय शक्लें ही उन्हें प्रासंगिकता और प्रामाणिकता प्रदान करती हैं. व्यक्ति की भीतरी और बाहरी प्रतिक्रियाएं उसकी मानसिक और चारित्रिक विशेषताओं की यथार्थवादी पहचान और प्रस्तुति ही लेखक की मानवीय परिकल्पना और अवधारणा की गहनता और व्यापकता का लक्षण हैं. इसीलिए परसाई की कहानियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उभरनेवाले मनुष्य के रूपों की विश्वसनीयता और यथार्थवादिता ही लेखक की प्रासंगिकता की भी कसौटी हो जाती है. परिवेश और सामाजिक स्थिति, भावबोध और अनुभव-संसार मिलकर ही मानवीय चरित्रों को उनका अपना विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं. इन्हीं से रचनाकार की मूल्यदृष्टि, जीवन दर्शन और विश्व दृष्टि का पता चलता है. कहानियों में से उभरनेवाले मानव बिंबों की पारदर्शिता, सहजता, जीवंतता और सघनता ही लेखक की मानव स्थिति की समझ और विकल्प चेतना को अभिव्यक्त करती है.

इस संदर्भ में परसाई की कहानियों का जायजा लें तो उनमें से समकालीन मनुष्य की इतनी विविध शक्लें उभरती हैं, उसके इतने मुख्तलिफ चेहरे और उसके इतने सघन और व्यापक प्रतिरूप सामने आते हैं कि वे सब परसाई के अनुभव संसार की गहनता और विविधता के ही प्रतीक हो जाते हैं. परसाई की कहानियां इस लिहाज से समकालीन भारत का एक सैरबीन-कैलिडोस्कोप हैं और यह बना है उन शबीहों से जो मुख्तलिफ वर्गों और स्थितियों, प्रसंगों और घटनाओं में फंसे और जद्दोजहद करते मनुष्यों की हैं, जो अपने माध्यम से राजनीति, प्रशासन तंत्र, शिक्षा, नौकरशाही, गर्ज की समकालीन जीवन जगत के लगभग हर स्तर को रौशन करती हैं.

जब नयी कहानी में नये व्यक्ति के नाम पर मध्यवर्गीय कुंठाओं को परोसा जा रहा था, तब परसाई ने अपनी कहानियों के माध्यम से समकालीन जीवन के केंद्रीय मनुष्य के अनेक बिंब पेश किये. जब नयी कहानी में, बकौल मुक्तिबोध, 'आधुनिक मानव की विचित्र मनोदशा को **उसके सारे संदर्भों से काटकर, उसके सारे बाह्य सामाजिक, पारिवारिक संबंधों से काटकर, उस मनोदशा को अधर में लटकाकर चित्रित किया जा रहा था और कहानी में एक धुंध समा रही थी, भीतरी और बाहरी दोनों और परिणामस्वरूप वस्तुसत्यों के संवेदनात्मक चित्रों का प्रायः लोप हो रहा था'**...तब परसाई ने समकालीन मनुष्य के भरसक विविधता भरे, समग्र और संपूर्ण बिंब पेश किये थे.

उनकी कहानियों में से उभरती शबीहें किनकी हैं? . . .व्यक्ति की, समकालीन समाज की, प्रवृत्तियों की, युगात्मा की—एक साथ सबकी.. . . उनके चरित्र एक ऐसे अनुभव को रूपायित करते हैं जो सामान्य दुनिया में असामान्य हैं. उनमें समकालीन रीतियों और रिवाजों का व्यापक विवरण और विश्लेषण है. वहां आत्मतुष्ट मध्यवर्ग है, आत्मदंभी बुद्धिजीवी है, दर्द को कलेजे की भट्टी में गलाकर हंसनेवाले, उदासीन वृत्ति की विक्षिप्त-सी लगनेवाली निरपेक्षता को प्रतीकीकृत करते पात्र हैं, ईमानदारी की बीमारी से ग्रस्त लोग हैं जिनकी करकती-खंगालती वेदना का घुमड़ता हुआ निःशब्द शोर हमारी-आपकी आत्मा तक को कंपा देता है. समकालीन भारतीय जीवन का ऐसा कोई भी कोना और वर्ग, चरित्र और व्यक्ति नहीं है जो परसाई की कहानियों में मूर्त न हुआ हो. इसीलिए तो यह कहा गया है कि इन कहानियों में आजादी के बाद के हिंदुस्तान की एक मुकम्मल तस्वीर उभरती है.

कहा जा सकता है कि परसाई की कहानियों में समकालीन समाज और मनुष्य का एक नकारात्मक और ऋणात्मक पहलू ही उभरता है. वे हर ओर एक छिद्रान्वेषी नजर से ही देखते हैं और उनका रवैया निषेधात्मक है. . .आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि क्यों कुछ अचार्य-आलोचकों ने उन्हें नकारात्मक योजना, पराजय का सूचक और अकलात्मक दृष्टिवाला घोषित किया था और नयी कहानी के कुछ नये प्रवक्ताओं ने उन्हें मूलतः दुखी प्राणी कहा था और उनके लेखन के पीछे उनकी व्यक्तिगत हीनता-ग्रंथियों की सक्रियता देखी थी. गौर कीजिए तो ये वही आलोचक-प्रवक्ता हैं जो रचना के निहित आशयों की समझ और रचनाओं की आंतरिक कलात्मक सत्ता और एकान्विति के साथ यथार्थ के शिल्प और शिल्प के यथार्थ पर भी जोर देने की वकालत करते हैं. हमें यह भी याद रखना चाहिए कि प्रेमचंद पर भी उनके कुछ समकालीन आलोचकों ने लगभग यही तोहमत लगायी थी. हमारी समझ से मनुष्य और समाज की मुक्ति के दो ही रास्ते हैं. एक तो उनकी कमजोरियों, गलतियों, विसंगतियों, अंतर्विरोधों को उद्घाटित कर दिया जाये ताकि वो उन पर विजय पा सकें और दूसरे उन्हें उनकी ताकत और माद्दा बता दिया जाये. मनुष्य और समाज के विकास की दिशा में बाधक और प्रतिगामी ताकतों, वृत्तियों और स्थितियों को उजागर करके ही तो आप उनकी अंतर्निहित ताकत का संकेत कर सकते हैं और हमारे लेखे यह एक सकारात्मक, विधेयात्मक, सक्रिय और असरदार तरीका है. यह ठीक है कि परसाई की कहानियों में सामाजिक विघटन और विसंगतियों के चित्र बहुतायत से हैं, लेकिन उनका निहित मंशा क्या है? वो सामाजिक और वैयक्तिक अंतर्विरोधों के साथ उनके कारणों को उजागर कर उस ओर भी तो इशारा करते हैं जिनसे इन अंतर्विरोधों और विसंगतियों का हल पाया जा सकता है और उससे नजात मिल सकती है. यहीं उस परिप्रेक्ष्य की समझ और शिनाख्त जरूरी और लाजिमी हो जाती है, जिसमें उनकी कहानियां लिखी गयी हैं. परसाई की कहानियां एक प्रतिवाद और प्रतिरोध की कहानियां हैं. वो मानवीय रिश्तों की हिफाजत की लड़ाई में मुब्तिला हैं. इसीलिए हर उस सिम्त और गोशे को उघाड़ने की कोशिश में लगी हैं जहां उन पर संकट है. वो उस सबके खिलाफ हैं जो मनुष्य, उसकी गरिमा, उसकी स्वतंत्रता, उसकी अस्मिता, उसकी समग्रता और पूर्णता के खिलाफ हैं. उनमें आदमी की चौतरफा आजादी के लिए क्रांतिकारी चेतना स्पंदित है. समाज का क्रांतिकारी परिवर्तन, मनुष्य की मुक्ति, एक बेहतर संसार की रचना—यही वो परिप्रेक्ष्य है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें उनकी कहानियां लिखी गयी हैं. उनके पीछे एक जीवन दर्शन और मूल्यदृष्टि है, एक विचारधारात्मक विवेक और विश्वदृष्टि है.

परसाई की कहानियां जितनी सहज और सीधी हैं, उससे लोगों को यह गलतफहमी भी होती है कि उनका अनुभव संसार भी उतना ही सरल सीधा और सपाट होगा. लोग भूल जाते हैं कि सीधी और सहज लगनेवाली चीजें और आदमी अनुभव का कितना जटिल संसार और उसकी संश्लिष्ट बुनावट अपने भीतर समोये होते हैं. आमतौर पर कुछ धुंध और कुहासे, कुछ गोलमोल और रहस्यमय ऐंद्रजालिकता में लिपटे लेखन को ही कलात्मक माननेवाले लोग यह भूल जाते हैं कि अभिव्यक्ति की सहजता एक लंबी रचना प्रक्रिया और अनुभव या अनुभूति के दीर्घ संघर्ष का नतीजा होती हैं. सीधी और सहज भाषा एक बेहद परिपक्व, वयस्क और गहरे चिंतन-मनन का नतीजा होती है.

कहानी-यात्रा में किसी एक कहानीकार ने कहानी के रूप में और उसकी संरचना में इतने अधिक प्रयोग नहीं किये हैं जितने अकेले हरिशंकर परसाई ने. निबंध और टिप्पणियां, साक्षात्कार और संस्मरण, रिपोर्ताज और रेखाचित्रों के विधागत मोटिफ़ उनकी कहानियों में घुलमिल गये हैं. पुराणकथा, दंतकथा और मिथक, बेतालकथा, तिलस्मी और ऐयारी कथाएं, प्रेमाख्यान और लोककथा, लोकवार्ता और स्वांग, कपोलकल्पना और कथामूलक फैंटेसी, लघुकथाएं और लंबी कहानियां, औपन्यासिक और ऐतिहासिक दस्तावेज, नाटकीय विन्यास और कैरीकेचर, पैरोडी और अन्योक्ति, दृष्टांत और प्रतीक कथा, रूपक और सादृश्य-गर्ज यह कि आदिकाल से लेकर अब तक, कहानी की विकासयात्रा का कौन-सा ऐसा रूप है जो उनमें नहीं है?

दरअसल इन सबके माध्यम से परसाई ने कहानी विधा की औपचारिकता, रूपगत जकड़न को जिस तरह तोड़ा है उससे बरबस निराला की वह कलाचेष्टा याद आ जाती है, जिसे उन्होंने 'छंद की मुक्ति' कहा था और उसे कविता की मुक्ति के लिए अनिवार्य सौंदर्यात्मक प्रयत्न माना था और अंततः उसे मनुष्य की मुक्ति से संयुक्त किया था. परसाई की कहानियों में भी कहानी की मुक्ति देखी जा सकती है. ऊपर की सारी संरचनात्मक चेष्टाओं, तंत्रगत संयोजन और शैल्पिक सन्निविधियों के जरिये उन्होंने कहानी की सीमा का ही विस्तार किया है. मिथक और फैंटेसी का इस्तेमाल करके आधुनिक कविता-और खासकर मुक्तिबोध ने जिस तरह देश और काल, स्थिति और अवधि की दूरी को संचरित करते हुए अनुभव की सघन वर्तमानता अर्जित की, उसी तरह गद्य में मिथक और फैंटेसी के माध्यम से परसाई ने समकालीन मानव अनुभवों के आशय और आघात को एक कालातीत गूंज प्रदान की है. इसीलिए उनके अनुभव और संवेदनाघात छपे हुए शब्द की सीमा का अतिक्रमण कर उच्चरित शब्द की शक्ति और समग्र रंगकर्म के आघात का स्तर अनायास पा लेते हैं. उनकी कहानियों में स्थितियों का जो नाटकीय विन्यास और मोड़ होता है, जीवन-क्रियाओं का जो गहन संघर्ष होता है, पात्रों की बातचीत में जो विट् और विनोद, जो अर्थच्छटाएं और अनुगूंज होती हैं, प्रसंगों का जो आरोह-अवरोह होता है, मनोदशाओं की जो रंग-स्वरा होती है और परिणति की ओर बढ़ता हुआ जो दुर्द्धर्ष कथ्य होता है, वह पढ़नेवाले को महज दर्शक ही नहीं, अपने जीवंत अनुभवों में भागीदार भी बना देता है. रचना में पाठक की इतनी गहरी तल्लीनता और हिस्सेदारी कम ही रचनाकार ले पाते हैं. यही उनकी कहानियों के प्रभाव की समग्रता, तीव्रता और एकान्वित का कारण है. कहानी में रंग-आघातों का-सा यह संयोजन समकालीन हिंदी कहानी में दुर्लभ है. यह महज संयोग नहीं है कि परसाई के उपन्यास और कहानियों के रंग-रूपांतर मंच पर इतनी सफलता से प्रस्तुत हो सके हैं. उनके यहां प्रसंग और हैपनिन्ग्स, चरित्र गतियां और यथार्थ स्थितियां जिस कलात्मक तनाव और रचनात्मक संतुलन में अनुस्यूत और संयोजित होती हैं, वो उसी तरह अमिधा और लक्षणा को लांघकर कविता की तीसरी आवाज थर्ड वॉयस की मानिंद व्यंजना की गूंज और अनुगूंज तक उठ जाती है जैसे समग्र रंगकर्म में रंगस्वर. यह इन कहानियों की काव्यात्मक अन्विति का ही कमाल है कि वो लोगों के साथ इस तरह हो जाती, हो लेती हैं, रही आती हैं जैसे लोककथाएं या कहावतें.

इसकी एक और वजह इन कहानियों की मस्तिष्क संरचना है. कुछ आचार्य-आलोचकों को परसाई की भाषा में व्याकरण हीनता, ग्राम्त्व-दोष और किसी-किसी को तो भदेसपन भी नजर आता है, लेकिन परसाई की कहानियों की अंतर्वस्तु जिस समाज और आदमी से आती है, भाषा भी उसी की बोलचाल की, उसी के रहन-सहन और रीति-रिवाजों की है. उसमें सड़कों-गलियों, आफिस-कारखानों, खेतों-खलिहानों के जनजीवन की खालिस देसी बोली के तेवर हैं, उसी के कहनात और मुहावरे हैं और उनकी इस भाषा ने न केवल हिंदी गद्य का मिजाज बदला है बल्कि पूरे तेवर और मुहावरे को जिंदादिल और मर्दाना बनाया है. हिंदी गद्य के देसी मिजाज और तेवर के इसी तात्कालिक असर की वजह से इन कहानियों के पाठकों का दायरा इतना बड़ा है और वो इतनी लोकप्रिय हैं. लेकिन उनकी लोकप्रियता सस्ती लोकप्रियता नहीं है. वह कबीर और प्रेमचंद की-सी लोकप्रियता है.

उनकी कहानियां पाठकों के दिलो-दिमाग में एक हलचल पैदा करती हैं. उनकी बातें और विचार पाठकों की चेतना और तमीज का हिस्सा बन जाते हैं और जिस प्रकार लोग लोककथाओं से अपने अनुभव और बात की पुष्टि करते हैं उसी तरह परसाई की कहानियों से काम लेते हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

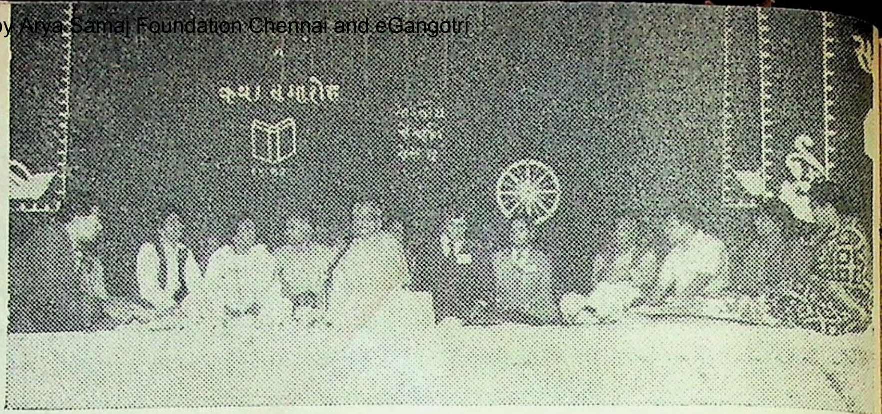

कलकत्ता कथा-समारोह

एक उपलब्धि-हीन सम्मेलन

भारतीय संस्कृति संसद द्वारा पिछले दिनों श्री शिक्षायतन सभागार, कलकत्ता में 'कथा-समारोह : 1983' हुआ. आयोजन के संबंध में आयोजकों और दर्शकों-श्रोताओं में उत्साह दिखाई दिया था, लेकिन जिस ढंग से कथा-समारोह संपन्न हुआ, उसे निराशाजनक से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता. 1965 में जब कथा-समारोह संपन्न हुआ था, उसे हिंदी कथा-साहित्य में अभूतपूर्व घटना के रूप में बहुत दिनों तक याद किया जाता रहा. इसके पीछे मुख्य रूप से दो कारण थे—एक तो कहानी के क्षेत्र में उस समय पत्रिकाओं, लेखकों, पाठकों और संपादकों में बेहद उत्साह था. 'नयी कहानी' का आंदोलन उस समय स्थापित होने की प्रक्रिया में था और पुरानी पीढ़ी के लेखक अपने अनुभवों के दुहराव तथा कृत्रिम अनुभूतियों के कारण ढह रहे थे. कहानी के क्षेत्र में नयी भावभूमि बन रही थी—जो पारिभाषित होना चाहती थी. कथा-समारोह में जो कथाकार आमंत्रित किये गये थे, वे सभी कहानी लेखन और चर्चा के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए लोग थे.

'कथा समारोह : 1983' में लेखकों का चयन इतने अव्यवस्थित ढंग से किया गया था कि सूची को पढ़कर हिंदी कहानी लेखन की कोई साफ तस्वीर नहीं बनती थी. सर्वश्री भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, गोविंद मिश्र जैसे चार कथाकारों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा कथाकार नहीं था, जिसका स्थान हिंदी में बन चुका हो.

बहरहाल, जो लेखक कथा-समारोह में सम्मिलित हुए, वे थे—सर्वश्री जैनेंद्र कुमार, भीष्म साहनी, प्रभाकर माचवे, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, लक्ष्मीनारायण लाल, उषा प्रियंवदा, रामदरश मिश्र, हिमांशु जोशी, गोविंद मिश्र, नरेंद्र कोहली, बटरोही, सिद्धेश, राजी सेठ, अवधनारायण मुद्गल, अवधनारायण सिंह, विवेकी राय तथा आलोचक डॉ. कल्याणमल लोढ़ा एवं डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर.

जैनेंद्र कुमार ने समारोह का उद्घाटन किया. मुख्य अतिथि थे बंगला के प्रख्यात उपन्यासकार समरेश बसु. अपने उद्घाटन भाषण में जैनेंद्र कुमार ने शब्द की व्यापक सत्ता पर बोलते हुए कहा कि मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है. कोई भी रचना मनुष्य को लांघकर हो नहीं सकती. समरेश बसु ने जैनेंद्र कुमार के विचारों पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अपने बंगला भाषण में कहा कि समाज से कटकर साहित्य नहीं रह सकता.

प्रथम सत्र 'कथा-यात्रा दो दशक : परंपरा एवं बाह्य प्रभाव' का विषय प्रवर्तन गोविंद मिश्र ने किया. उन्होंने समकालीन लेखन में मौजूद दो परस्पर विरोधी अतिवादों की ओर संकेत किया. भावी समाज के बारे में उन्होंने आशंका व्यक्त की कि कहीं हमारे एकात्मक मूल्य ही एकदम खो न जायें. मगर उनके अनुसार ये मूल्य ही चूंकि रचना के प्राण हैं, इसलिए ये कभी मर नहीं सकते. प्रथम सत्र के दूसरे वक्ता थे विवेकी राय.

द्वितीय सत्र का विषय था—'विशिष्ट कृतियां एवं उपलब्धियां.' डॉ चंद्रकांत बांदिवडेकर ने अपने लंबे लेख को पढ़कर विषय प्रवर्तन किया. विवेकी राय तथा डॉ. प्रभाकर माचवे ने भी इस सत्र में अपने विचार व्यक्त किये.

तीसरे सत्र का विषय था—'रचना-धर्मिता, प्रतिबद्धता और दायित्वबोध'. इस गोष्ठी में विषय प्रवर्तन किया सिद्धेश ने. कहानी को केंद्रीय विधा सिद्ध करते हुए उन्होंने कहानी का संबंध जनजीवन की अंतरंग भावनाओं के साथ जोड़ा. उषा प्रियंवदा, नरेंद्र कोहली, मन्नू भंडारी एवं राजी सेठ ने भी अपने विचार व्यक्त किये.

चतुर्थ सत्र में 'यथार्थवाद : तथ्य, कथ्य और शिल्प' का विषय प्रवर्तन किया निर्मल वर्मा ने. उन्होंने यथार्थवाद और यथार्थ के बीच अंतर किये जाने की बात पर जोर दिया. उन्होंने कहा कि यथार्थवाद एक ऐसी बेशक्ल टोपी है, जिसे सब पहन सकते हैं.

बटरोही ने अपने वक्तव्य में सामाजिक यथार्थ और रचनात्मक यथार्थ की चर्चा की. अवधनारायण मुद्गल एवं विवेकी राय ने भी यथार्थ और यथार्थवाद को रचनात्मक स्तर पर लिये जाने की बात की.

पांचवें सत्र का विषय था—'कथा साहित्य : पुनर्मूल्यांकन, नयी दृष्टि एवं नयी दिशाएं.' विषय प्रवर्तन किया नरेंद्र कोहली ने. हिमांशु जोशी व चंद्रकांत बांदिवडेकर ने इस सत्र में अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये. कुल मिलाकर कोई सार्थक उपलब्धि समारोह की रही हो, ऐसा नहीं लगा. बहस कहानी से हटकर लेखकों ने खुद अपने पर समेट ली थी. □

● **विशेष प्रतिनिधि**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशार्क

• जैनेंद्र कुमार

धारावाही उपन्यास : तेरहवीं किस्त

आप पढ़ चुके हैं कि

बड़े घर की एक लड़की साधारण घर के एक यूनिवर्सिटी टॉप लड़के की पत्नी बनी. सात बरस बीत गये. परिस्थितियां बिगड़ीं, उसने पत्नीत्व के अधिकार से वंचित कर दिया. पत्नी का अंत हुआ और एक नव-रमणी का आविर्भाव, देह-व्यापार करने वाली एक संवेदनशील मानुषी. देह को वह मूलधन मानती है और इसे खर्च करने में विश्वास नहीं करती. दरवाजे पर बोर्ड 'कन्सलटेंट' का लगा है. पुरुषों से मिलने की फीस हजार रुपया लेती है. विभिन्न प्रकार के लोग उसके पास आते हैं और उसके जीवन दर्शन के कायल होकर लौटते हैं. सेठ मानिक लाल और उनकी पत्नी माधुरी रंजना के आत्मीय लोगों में से हैं. लेकिन इधर कुछ समय से जैन समाज मानिक लाल पर दबाव डाल रहा था कि वे रंजना से न मिलें. . .

सात रोज के लिए सबकी छुट्टी कर दी गयी है. सिर्फ उसको रोक लिया है जो आये-गये को बता दे और फोन लेता रहे. निजी परिचारिका को भी छुट्टी मिल गयी थी. घर की झाड़ू-बुहारी रंजना खुद ही कर लेती. कपड़े धो लेती और कुछ यों ही बना-बनूकर भोजन का काम चला लेती.

उसे इंतजार था फ्रेंच मित्र के उत्तर का. वह परेशान थी, उस ध्यान से जो उसकी करतूत से यहां रंजना के प्रति केंद्रित होने लगा था. इधर-उधर जाने कहां-कहां से मांगें उस पर आने लगी थीं, कहां-कहां से आमंत्रण-निमंत्रण. गिरस्ती से वह निकली तो उसका आशय यह तो न था. सुलभ होने का आशय सार्वजनिक बनना तो न था. प्रख्यात बनना मानों सबके ऊपर आ जाना है, वह तो सबके भीतर होना चाहती थी.

इसी की प्रतिक्रिया में उसने अपने को अकेला कर लिया था.

आयी मधुरिमा और कर्मचारी ने उसे रोका. मधु को अचरज हुआ कर्मचारी के दुस्साहस पर. वह समझ न सकी. टोके जाने की परवाह न कर वह आगे बढ़ने लगी तो कर्मचारी द्वार के सामने आ गया.

"क्या बात है?"

"रानीजी का सख्त हुकुम है."

आया तो क्रोध लेकिन वह हंसी. बोली, "अच्छा-अच्छा, सख्त हुकुम सही, लेकिन एक तरफ तो हटो."—और हाथ से परे हटाकर द्वार खोल वह आगे बढ़ गयी.

रंजना रसोई में थी. निश्चिंत कि वह अकेली है और विघ्न कोई न होगा. इसमें वह कोई गीत गुनगुना उठी थी. हाथ काम में थे, मुख भजन में कि आहट हुई. मुड़ी और देखा कि मधु हंसती हुई पूछ रही है, "कहिये रानीजी, क्या हो रहा है?"

• चित्रांकन : हरिप्रकाश त्यागी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंजना चौंकी, पर खुश हुई.

"आप कैसे आ गयीं?"

"तुम्हारे आदमी को धकिया के आयी हूं. . . यह क्या सन्नाटा बना रखा है?"

"क्यों? मैं तो हूं?"

"देखती हूं, तुम तपसिन-भक्तिन बनी हुई हो. . . "

रंजना देखती सुनती मौन ही रह गयी.

"रानीजी तुम्हें मेरे साथ चलना है."

अब भी समझ न पायी. "—क्या बन रहा है यह?" कहते हुए बढ़कर मधु ने रंजना को परे किया और स्टोव पर चढ़े भगौने पर से ढकना उठाया.

"तो लो, तुम्हीं बनाओ." कहकर रंजना खुद अलग हट गयी थी. भगौने में खाली-खाली दलिया चढ़ा हुआ था जो होने को भी आ गया था.

"तो यह है तुम्हारा भोजन. . . ? बात क्या है?

रंजना मुस्कराती रही, बोली नहीं.

"यह भी पड़ेगा इसमें?"

मुस्कराहट में से ही स्वीकृति पाकर गुड़ के घोल को उसने पकते दलिये में छोड़ दिया. छोड़कर स्टोव की आंच को मध्यम किया और रंजना को बांह से पकड़कर वह रसोई-घर से बाहर ले आयी. बोली, "कपड़े बदलो ओर मेरे साथ चलो. दलिया मैं देखती हूं. "तुम तैयार हो."

"मामला क्या है?"

"सेठ साहब की खातिर तुम्हें चलना है."

प्रश्न पूछती हुई रंजना मधु को देखती रही.

"देखो नहीं. जाओ, तैयार हो."

स्थिति को रंजना समझ न सकी, समझने का अवकाश ही नहीं दिया गया और ठेलते हुए मधु ने कहा, "जाओ, तैयार हो." कहकर वह रसोई में लीन हो गयी.

इतने दलिया हुआ और रंजना कपड़े बदलकर आ गयी. मधु ने उसे कंधे से लिया और बराबर के कमरे में रंजना के सोनेवाले तख्त पर हाथ बिठाकर पूछा, "सच कहो, क्या है? अपने को ऐसा सूना क्यों बना डाला है?"

"छोड़ो. . . बताओ, मुझे साथ क्यों चलना है एकदम? सेठ साहब का हुक्म है?"

"हुक्म नहीं, जरूरत. तुम्हें मालूम है, एक शिविर चल रहा है दस रोज का. दो दिन से सेठ साहब उसी में खोये हैं. मालूम हुआ, वहीं रहेंगे पूरे दस रोज. मौन रहेंगे, शिविर के लोगों से ही आवश्यक बोलना हो तो हो सकेगा. बाहर किसी से नहीं. . . ध्यान शिविर है भई, ध्यानयोग शिविर. . . नाम नहीं सुना उनका? पहुंचे सिद्ध हैं कोई शिविरवाले. . ."

"तो मुझे क्यों चलना है."

"कह तो रही हूं रानीजी कि तुम्हारे यहां से आये तो जाने कैसे-कैसे थे. किसी से बोल, न चाल. मैंने पूछा, क्या है, तो गुम-सुम! मैं चिंता में पड़ी. सोचा कि तुम्हारी खबर लूं. पूछूं यह तुमने क्या किया. . . नाराज क्यों किया है?"

"नाराज? नहीं तो."

"शिविर के दो दिन निकल चुके थे. कायदा है कि आया

जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी

स्त्री स्वातंत्र्य और कुछ नहीं, मातृत्व से बचने की चाह है, लेकिन स्त्री भूलती है अगर वह अपने प्रेयसी रूप पर मुग्ध है. वह रूप छलना है, वह अनित्य है, क्षणिक है. और अगर उसमें मातृत्व का फल नहीं है तो वह निष्फल है, अनर्थकर है. स्त्री की सार्थकता मातृत्व है. मातृत्व दायित्व है. वह स्वातंत्र्य नहीं है.

(कल्याणी)

प्रेम और नहीं, वह विश्वास है. प्रेम में कामना नहीं हो सकती, उसमें इतना अपूर्णता ही नहीं हो सकती. सच्चे प्रेम का दूसरा नाम है विश्वास. कोई है, जिसका अब भी मुझ पर विश्वास है? विश्वास, मेरे देवत्व में विश्वास. जो मुझसे स्फूर्ति ले, जिसकी मैं स्वप्न हूं. क्या कोई ऐसा है? नहीं तो जीवन मेरा क्यों वृथा नहीं है?

(कल्याणी)

स्त्री किसलिए है यदि पुरुषों को प्रयोजनदान, फलदान में नियोजित नहीं करती? क्या स्त्री इसलिए है कि पुरुष को अपने से निरपेक्ष रहने दे और महाप्रकृति को बंध्या? क्योंकि दुनिया को रेगिस्तान नहीं होना है, क्योंकि उसको लहलहाकर हरियाली को उठना है, इसलिए क्या पुरुषों के इस जगत में विधाता ने स्त्रियों को नहीं सिरजा है?

(सुनीता)

हुआ जायेगा नहीं और शिविर आरंभ होने पर कोई बाहरी आ नहीं पायेगा. लेकिन हमारे सेठ साहब खास ठहरे. जाके एकदम दाखिला ले लिया. तबसे सोच में हूं . . . उन्हें तो उस तरफ कोई रुचि-वुचि थी नहीं. बहुत कहती तो मेरे साथ कभी-कबाक मुनि महाराज के पास चले जाते. . . मैं जानना चाहती हूं कि तुमने क्या किया है. अब तुम्हें ही इलाज करना है."

"तो वे घर नहीं आ रहे दो रोज से?"

"खबर तक नहीं."

"तुम गयी थीं शिविर, उन्हें देखने?"

"गयी थी. पर मिलना नहीं हुआ."

"अच्छा शिविर है. . . कि कैदखाना है."

"बताया गया कि बाहर का विक्षेप बाधा डालता है. . . मन की शांति भंग करता है. ."

"अच्छी हुई शांति यह. . . तो मुझे ले जा के क्या करोगी? वे शिविर में हैं और कोई मिल नहीं सकता."

"नहीं, चलो, एक और बात है."

घर पहुंची तो सचमुच एक और बात थी! वहां थी पारमिता जिसकी राज को तलाश है. नाम उसका फुसफुसाकर लिया जाता है. देखकर उसे दंग रह जाना पड़ा. पच्चीस-एक बरस के आसपास होगी. आंखों में अजब चमक है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं मानता हूं कि स्त्री के प्रति पुरुष में पुरुषोचित भाव भी जगे तो कोई अनहोनी बात नहीं है लेकिन प्रशंसा करनी होगी दोनों की, कि दोनों मुगालते में नहीं हैं. फिर भी दोनों मर्यादाएं हैं. इसीलिए यह दृढ़ता है जो कर्तव्य में से निरी नहीं आती है. उसमें स्नेह का पुट है, इसलिए कठोर नहीं है.

(मुक्तिबोध)

कब स्त्री पुरुष को समझ सकी है कि वह क्यों लड़ता है? मरता-मारता है, शिकार में और युद्ध में मजा लेता है—यह समझ में कैसे आ सकता है? फिर भी स्त्री है कि पुरुष के उस शौक में मदद करती है. इसलिए कि शौक को समझती है बल्कि इसलिए कि पुरुष है वह और अपनी सफलता की राह पर स्त्री का प्रार्थी है.

(मुक्तिबोध)

आदमी को मैंने देख लिया है, वह बेचारा होता है. इस बेचारगी में धर्मपत्नी सचमुच उसे सहारा होती होगी. लेकिन उसका अर्थ मेरे लिए पुरुष की पत्नी के आगे खुद धर्म की ही पत्नी हुआ जा रहा है. पत्नी से चाहा जाता है कि वह एक में खो जाये. मैं अपने को एक में नहीं खो सकी, न आगे खो सकूंगी. तो इसका अर्थ मेरे लिए यह हो गया है कि मैं स्त्री हूं, अपने धर्म को नहीं भूल सकती हूं और सबके निकट स्त्री हूं. स्त्री के प्रति पुरुष में प्यार हो तो मैं उसका सत्कार ही कर सकती हूं.

(अनंतर)

बहुत ही सलोनी लगती है!

मधु ने कहा, "जानती हो इन्हें, यही रंजना है. . . और ये पारमिता . . . मेरी सगी बहिन समझो. मां-बाप से निकल आयी है और मुझे अपना मान बैठी है. जंगलों में रहती हैं और बच-बचाकर कभी शहर में आ जाती हैं, काम के सिल-सिले से. . ."

रंजना उस लड़की को देखती रह गयी थी. क्या यही है जिसका आतंक है, जिस पर पांच हजार का इनाम है? देखने में कितनी मधुर. बस आंख में कभी चिंगारी झलक आती है.

पारिमता बोली नहीं. न रंजना ने कुछ कहा.

"पम्मी, यह अपनी हैं. दुविधा न रक्खो. . ."

पम्मी जिसे कहा गया, वह बोली अब भी नहीं. रंजना को देखती भर रह गयी. इधर रंजना भी सेठानी और क्रांतिकारिणी के इस अजब से संबंध को समझ नहीं पा रही थी.

"आपके बारे में इन्होंने बताया था." आखिर पारमिता बोली, "अब इनका विचार है कि आपने उनमें शांति की आवश्यकता पैदा की है!"

"शांति गलत चीज तो नहीं है!"

"है गलत, वह बचना है. वह आपसे ही बचने को तो ध्यान में डूबने नहीं जा पहुंचे?"

"अगर ऐसा हो भी तो क्या हर्ज है?"

"वह कामकाजी आदमी हैं. . . आपको ऐसा नहीं चाहिए."

"क्या बक रही है तू यह पम्मी!" मधु ने टोका.

"तुम्हीं ने कहा था कि रंजना. . ."

"मैंने क्या कहा था?"

"कि यह मुक्त प्रेम में विश्वास करती हैं. नहीं कहा था?"

"हां, मैं प्रेम में विश्वास करती हूं जो मुक्त ही हो सकता है!"

"तो यह ठीक है कि एक विवाहित पुरुष पर डोरे डालो?"

"विवाहित और करोड़पति!" कहा और रंजना सामने की इस ढीठ लड़की को देखती रह गयी. फिर मधु की ओर मुड़कर बोली, "कहिए—क्या आपको भी शिकायत है?"

"अरे, यह तो पगली है. . . मालूम है तुम्हें, यूनिवर्सिटी में इसका रिकार्ड है. . ."

मानो चीखकर पम्मी बोली, "दीदी, चुप करो!"

"चुपकर तू, नहीं है तेरा रिकार्ड, शुरू से आखिर तक. . . और रंजना, एक लड़का था. लाड़-लाड़ में दोनों लड़ बैठे. वह अमरीका में है और प्रसिद्ध विज्ञानी हो चला है. इसने बताया कि अब चार साल बाद उसने शादी कर ली है. इसने ही खदेड़ दिया था उसे देश से विदेश. जानती हो क्यों? क्योंकि मार-काट की राह से वह बचना चाहता था, बचाना चाहता था, और यह अध्यात्म में विश्वास करती थी कि न कोई मारता है और न मरता है. . . अन्यायी, अत्याचारी अपनी मौत मरता है. हम तो निमित्त मात्र हैं. . . जो अन्याय को रहने देता है, सहने को कहता है, अहिंसक नहीं, कायर है. .. छठे-छमाहे आ जाती है मेरे पास पैसे की जरूरत से तो मुझे यही समझाती रहती है और मुझे समझते रहना पड़ता है. . . पर हम लोग जैन हैं, अहिंसावाले हैं और कायर हैं तो क्या? पर मानते हैं उसको इसके बड़े ज्ञान के लिए, सगी बहिन. छोटी तो है ही, गुरुआनी भी मानते हैं. अच्छा लगता है जब देश की गरीबी बताती है. समझाती है, हमें और हुक्म देती है कि इतना पैसा दो. और हम कृतार्थ होते हैं कि देते हैं. . . क्योंकि अहिंसा के सिवा और कुछ तो कर नहीं सकते हैं. . इसकी तरह घर से निकलकर बहादुरी तो कर नहीं सकते हैं. . . सुन पम्मी, इस रंजना ने प्यार किया भी तुम्हारे सेठ साहब को तो तू प्यार से इतना डरती क्यों है?"

"दीदी!" एकदम भड़ककर पारमिता बोली, "प्यार-व्यार नहीं है यह. प्यार तो कुर्बानी सिखाता है. प्यार रुकना नहीं है, घिरना नहीं है. . . बचना नहीं है, बचाना नहीं है. घर-गिरस्ती बनाना-बिछाना नहीं है. . ."

"बस-बस, कह तो दिया, तू गुरुआनी है, अब तो बख्श!"

पारमिता सचमुच चुप-चुपाती बैठ गयी. लेकिन रंजना के प्रति उसकी निगाह में तरेर थी.

"मैं तुम दोनों को मिलाना चाहती थी. दोनों से सहायता भी चाहती थी. हमारे सेठ बड़े बिजी आदमी हैं. क्या करते-वरते हैं, मुझे इसकी फिक्र नहीं है. बस करते रहें और बढ़ते रहें और इसी में डूबे रहें तो मुझे ठीक लगेगा. मैं उन्हें जानती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं. उनके पौरुष का तकाजा है जो मुझ में खत्म नहीं है. . . समाज की निगाह के लिए शिविर में गये होते तो सही होता, उसका उद्घाटन करते और फिर चाहे नम्र शिविरार्थी बनते. पर मैं कह रही हूं रंजना, वे गुमसुम थे, गंभीर थे और यह गंभीरता . . .नहीं, तुमने यह ठीक नहीं किया."

"क्या किया?"

"जो भी किया."

"नहीं, मधुजी, गलत नहीं था. पर बताओ, अब चाहती क्या हो! . . . शिविर से बाहर उन्हें बुला भेजना चाहती हो?" बीच में पम्मी बोली, "आप दीदी लौट क्यों आयीं सीधी शिविर से उनके कहने पे?"

"नहीं तो क्या करती? उत्पात करती? तू क्या करती?"

"मैं. . . यह मत पूछो मुझसे. इन हाथों से मैंने तीन अफसरों को मौत के घाट पहुंचाया है. इन्हीं हाथों से आगे क्या न होगा, मैं नहीं जान सकती. इसलिए मत पूछो. . . नाराज मत होना दीदी. अहिंसा ने तुम्हें कायर बनाया है. डरती हो आसपास के लोक लिहाज से. . . क्या बताऊं, मैं जा सकती नहीं. . यह ध्यान-व्यान चोंचला है. . चाहते हैं लोग शांति कि अंतःकरण उनका सो जाये, कुरेद उसकी बंद हो जाये. ये सुख-सुविधा भोगी लोग. . ."

रंजना सुन नहीं रही थी. पर्स से कागज निकालकर लिखने में लगी था— 'मधुजी मुझे घर ले आयी हैं. आप दो दिन से नहीं आये हैं. कृपया आ जायें.' नीचे 'रंजना' लिखकर कागज उसने मधुरिमा की ओर बढ़ाया. कहा, "इसे भिजवाकर देखिए किसी के हाथ अभी."

पारमिता को अपने वेग में रुकना पड़ा और यह उसे शायद अच्छा नहीं लगा. बोली, "आपके पत्र से आ जायेंगे, आप समझती है."

"पारमिताजी, मैं कुछ नहीं समझती. लेकिन यह आपकी दीदी मानती हैं, शायद कि कामकाज से हटाकर मैंने उनमें यह भाव पैदा किया है. देखती हूं कि इसमें कितना सच है."

माधुरी ने तभी ताकीद से वह कागज जगह-पता समझाकर एक विश्वस्त आदमी के हाथ भिजवा दिया और बोली, "रंजना, हंसी नहीं, सच तुमने लिखा क्या था?"

"सच कहती हूं, जरा प्यार किया था!"

"वह तो किया होगा लेकिन उस पर इतने यह उखड़े क्यों?"

"उन्हें यह अच्छा नहीं लगा. सत् पुरुष के यही लक्षण हैं."

"तो डांट देते तुम्हें, यह उल्टे भागना क्या?"

"यही तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है!"

इस बात से मानो किनारे छूट गयी पम्मी की तरफ देखकर मधु ने कहा, "हां, क्या कह रही थी—कि सुखी-सुविधाभोगी लोग. . ."

"नाराज मत होना दीदी. तुम तो देवी हो, लेकिन धन से जुटनेवाला यह सब आराम-ऐश. . . हमारे धरम-धियान वाले योगी गुरु लोग उसको सुरक्षा देने का ही काम नहीं करते रहते हैं. लेकिन लोगों की हाय से आखिर बचा कब तक जा सकेगा?"

पारमिता और वेग में आये, इससे पहले ही मधु बोली, "जानती हो रंजना, उस अपने मध्य देश के जंगल में इस अपनी पम्मी का राज- चलता है. आदिवासी, बनवासी, गिरवासी, इसकी सुनते हैं. और किसी की सुनने को तैयार नहीं हैं. सरकारी राज कागज पर रह गया है, अधिकारी जन कागजी खाना-पूरी करते रहते हैं. असल में हुकूमत इसकी चलती है. अफसर-महाजन दबे-दबे रहने में कुशल मानते हैं. पुलिस इसकी कृपा पर है. यह मेरी बहादुर बहिन अपनी अदालत चलाती है. पंचायत बुलाती और न्याय-विचार करती है, मनमानी नहीं. जो करती ईश्वर की साक्षी में करती है. इसकी अदालत दंड तभी देती है जब पूरा सामाजिक औचित्य पाती है."

"यह ठीक है पारमिताजी," रंजना ने कहा, "है तो बहुत ही शुभ. ऊपर जो तंत्र छाया है, वह आखिर लोक सम्मान होने के दावे पर ही तो है. . . लेकिन सुना है, आपकी अदालत रात में बैठती है. . ."

"नहीं तो क्या हम बेवकूफ हैं!"

"आप लोग कितना पा जाते होंगे इस जैन परिवार से एक महीने में."

"आपको इससे मतलब?"

मधु ने भी टोका "तुम्हें इससे क्या मतलब है, रंजना?"

"मतलब नहीं है. . . खेत में बीज डालने या कुछ घरेलू उद्योग के उपकरण जुटाने में पैसा लगता होगा. मुझे सूझा कि बहादुरी करके ये किसी को पांच हजार आसानी से कमवा दे सकती तो?"

मधु डपट के बोली, "रंजना!"

पारमिता ने कहा, "ओः गांधीवाद!" और कहने के साथ उसका चेहरा कड़वा हो आया.

उसी समय गया आदमी हाथ में एक पुर्जा लेकर लौटा. वह रंजना नहीं, मधुरिमा के लिए था. लिखा था : 'अनुमति नहीं हैं' बस इतना ही.

मधु ने चिट रंजना की ओर बढ़ा दी. इन तीन शब्दों को पढ़ने में उसे समय लगा. आखिर उस कतर पर से आंख उठी और उसने मधु को देखा.

मधु खिल के हंसी, "देखती हो रंजना—मानिक सेठ, और किसी और की उन पर अनुमति!"

"मधु," रंजना ने कहा, "तुम मेरे पास से बदली लौटी और सेठ ने अपने को कृतज्ञ माना था. अब कहना मेरी तरफ से, अपनी तरफ से भी, कि—प्यार पाप नहीं है, वह इलाज है. समझीं, वह इलाज है."

अगले अंक में

क्या रंजना पारमिता को अपना दर्शन समझा पायी?. . मानिक सेठ ने क्यों रंजना की इस तरह अवहेलना की?. . . इन्हीं कुछ सवालों के जवाब तलाशती दर्शक की समापन किस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक जैन पुरस्कार

राष्ट्रीय-चेतना-युक्त विज्ञापन के लिये

जन-शिक्षण के विशिष्ट विज्ञापन-अभियान की रचना कीजिए और पुरस्कार जीतिये. पुरस्कार के साथ आपके अभियान को समूचे राष्ट्र तक पहुंचाने की व्यवस्था.

विज्ञापन विधा में सार्थकता, प्रभावशीलता और जनसेवा की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए, और ऐसे विज्ञापन-अभियानों को व्यापक अखिल राष्ट्रीय पाठक-परिधि तक पहुंचाने के लिए, टाइम्स ऑफ इंडिया समूह राष्ट्रीय चेतनायुक्त विज्ञापनों के लिए, अशोक जैन पुरस्कार के आयोजन की घोषणा कर रहा है.

मुद्रण माध्यम (प्रिंट मीडियम) के ऐसे सर्वश्रेष्ठ विज्ञापन पुरस्कृत किये जायेंगे, जो जनोपयोगी उद्देश्यों और महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों के बारे में लोगों को अधिक जागरूक बनाएं. पुरस्कार दो होंगे - एक हिन्दी के लिये और एक अंग्रेजी के लिये. जीवन के विविध क्षेत्रों के प्रतिष्ठित व्यक्ति इस के निर्णायक होंगे.

पुरस्कार के लिये कोई भी प्रविष्टि भेज सकता है - कम्पनियां, विज्ञापन एजेंसियां, पेशेवर डिजाइनर और कॉपीराइटर, जनसेवी संस्थाएं या स्वयम् कोई व्यक्ति भी. कोई भी व्यक्ति या संस्था पुरस्कार के प्रत्याशी हो सकते हैं यदि वे जन-शिक्षण और सूचना से युक्त ऐसे विज्ञापन-अभियान की रचना करें, जो जनता को शिक्षण दे सके, सूचना दे सके, प्रेरणा दे सके, संकल्प दे सके. यह अभियान (कैम्पेन) पूर्व प्रकाशित भी हो सकता है और सर्वथा अप्रकाशित भी. व्यावसायिक संस्थान का भी हो सकता है और अव्यावसायिक भी.

विज्ञापन-अभियान में प्रचारित सामाजिक उद्देश्यों को समर्थन देने के लिए हम यह व्यवस्था करने का आश्वासन देते हैं कि देश के कोने कोने में वे उपयुक्त पाठक वर्ग तक पहुंचें. हम देश की कुछ सर्वश्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में उसे नि:शुल्क प्रकाशित करेंगे. व्यापक लोकोन्मुखी या निर्धारित विषयों वाली पत्रिकाएं जैसे द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया, धर्मयुग, फिल्मफेयर, फेमिना, साइन्स टुडे, वामा, माधुरी, दिनमान, सारिका, पराग, और खेल भारती. दैनिक अख़बार जैसे द टाइम्स ऑफ इंडिया, नवभारत टाइम्स, इकॉनॉमिक टाइम्स और महाराष्ट्र टाइम्स - उनके अनेक संस्करण: यानी सचमुच पूरे राष्ट्र तक बात पहुंचाई जायेगी और ऐसे पाठक वर्ग तक जो प्रबुध्द है, संवेदनशील है और कुछ करना चाहता है.

पुरस्कृत विज्ञापन रचना की सृजनात्मक उत्कृष्टता के प्रशस्ति पत्र दिये जायेंगे. विषय वस्तु की उत्कृष्टता, प्रेरणा पूर्ण आलेख (कापी राइटिंग) डिजाइन और ले-आउट के लिये नगद पुरस्कार राशि भी प्रदान की जायगी! यह पुरस्कार राशि उन व्यक्तियों की उपलब्धियों के सम्मानार्थ होगी जिनकी पेशेवर कुशलता या शौकिया आकांक्षाओं ने उनकी रचना को संजीव और सप्राण बना दिया है.

यथासमय इनका एक संकलन भी प्रकाशित करने की योजना है, जिसमें सर्वश्रेष्ठ विज्ञापन-अभियान संकलित होंगे, पुरस्कृत भी और ऐसे भी जो पुरस्कृत होने से रह गये.

महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्यों की दिशा में जागरूकता पैदा करने वाले तमाम हिंदी या अंग्रेजी विज्ञापन-अभियान इन पुरस्कारों के लिये प्रतियोगी हो सकते हैं. सामाजिक हित के अनेक क्षेत्र, जैसे राष्ट्र-निर्माण, शिक्षा, स्वास्थ्य-चेतना, पर्यावरण, कानून और नागरिक अधिकार, कला और संस्कृति, परिवार कल्याण, ग्राम विकास, नागरिक समस्याएं, उपभोक्ताओं का हित रक्षण, नारी अधिकार, पिछड़े वर्गों की प्रगति, राष्ट्रीय एकता, नैतिक मूल्य, अनुशासन, ऊर्जा-संरक्षण, धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा, या अपंगों और अशक्तों की सेवा-सहायता.

कोई भी मुद्दा, छोटा हो या बड़ा, विशिष्ट हो या व्यापक, अखिल भारतीय हो या केवल स्थानीय - पुरस्कार जीत सकता है यदि निर्णायक मण्डल अनुभव करता है कि अभियान (कैम्पेन) उत्कृष्ट स्तर का है और राष्ट्र की वर्तमान प्रगति के दौर में सार्थक और प्रासंगिक है.

१८३८ में स्थापित

विशेष विवरण के लिये १५ मई १९८४ से पहले निम्न पते पर लिखें– द पब्लिशिंग डाइरेक्टर, बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी लि., डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-४००००१. हम आपको परिचय पुस्तिका, नियमावली और प्रवेश पत्र भेज देंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar